संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

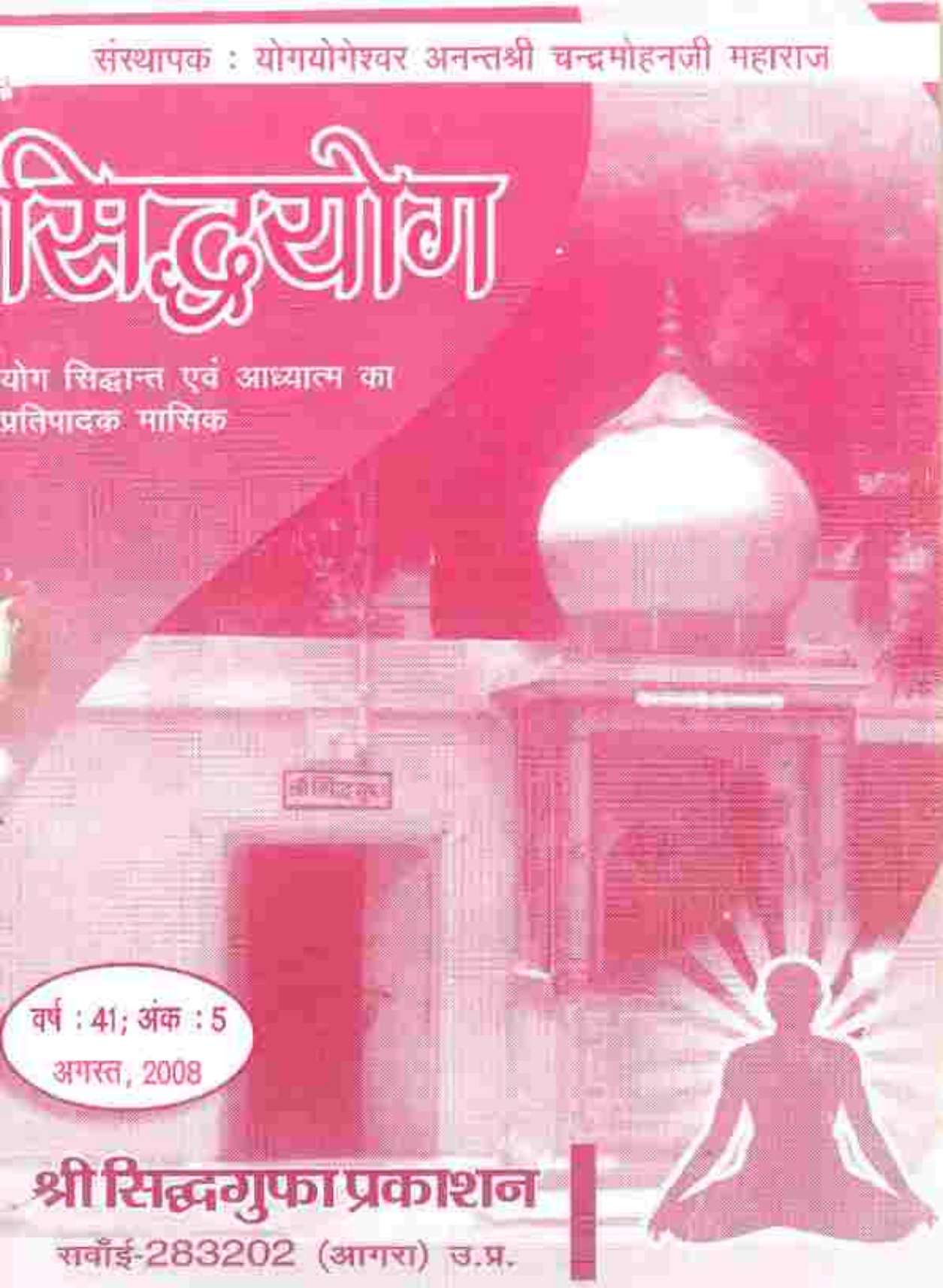

वर्ष : 41; अंक : 5
अगस्त, 2008

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

दुष्ट दुर्जनेन समं सख्यं वैरमपि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।।

(हितोपदेश)

दुष्ट प्रकृति के मनुष्य के साथ मित्रता या बैर, कुछ भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि दुष्ट व्यक्ति दोनों स्थितियों में ही अनिष्ट करता है। जैसे जलते हुए कोयले (अंगार) का स्पर्श करने से हाथ जलता है, तो ठण्डा कोयला हाथ काला कर देता है।

● ● ●

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः।।

(चाणक्य नीति)

जैसे फूलों में गन्ध होती है, तिलों में तैल होता है, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी और ईख में गुड़ होता है, वैसे ही शरीर में आत्मा होती है। बुद्धिमान व्यक्ति विवेक के द्वारा इनका साक्षात्कार करता है।

● ● ●

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अर्थात् नीति निपुण लोग चाहे निन्दा करें या स्तुति, धन-सम्पदा प्राप्त हो अथवा चली जाये, आज मृत्यु होवे या युगों के बाद, किंतु धीर पुरुषों के पद न्याय पथ से विचलित नहीं होते।

● ● ●

शतं वो ऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधाशतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत।।

—यजुर्वेद

मनुष्यों को चाहिये कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत् पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष: 41 अंक : 5

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।
चक्रं सहस्रकरचारु करारविन्दे मूर्ध्नी
गदा दरश्वरश्च विभाति यस्य।
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिशोपितपादपद्मो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धु।।

जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदिदेव जगत उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण जगत जो अनादि मूल जिस परमेश्वर में सम्पूर्ण जगत स्थित है तथा अन्तकाल में यह समस्त जगत जिसमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रों के सामने प्रकट हों। जिनके करकमल में सुन्दर व सशक्त चक्रसुदर्शन चक्र, भारी गदा और श्वेत शंख सुशोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड़) की पीठ पर अपने चरण कमल रखे हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रों के सम्मुख प्रकट हों।

अगस्त 2008

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	7
3.	**ईश्वर कौन?** – डा. जे पी. शर्मा	10
4.	**श्रद्धावान् लभते** – पं कृष्ण कुमार पाण्डेय	15
5.	**भक्ति** – स्वामी विवेकानन्द	17
6.	**सद्गुरु कृपालीला** – श्री जगदीश राय बंसल	24
7.	**बहारो फूल बरसाओ** – श्री जगदीश राय बंसल	26
8.	**श्री अशोक जी के परिवार पर अहैतुकी की कृपा** – श्री ऊंशवदेव उपाध्याय	27
9.	**योग साधन आश्रम ऋषिकेश का योग महामेला सम्पन्न**	31
10.	**व्यक्तित्व के विकास में गायत्री साधना का उपयोग** – प लीलापत शर्मा	33
11.	**चेतना का विकास ही मानवीय समस्याओं का समाधान** – डा सुमन कोचर	37
12.	**अब कौन बुलायेगा?** – श्री आर.बी. श्रीवास्तव 'चन्दानन्द'	39
13.	**चाय का सेवन उपयोगी या हानिकारक** फौजिया नसीम 'शाद'	40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सिद्धियाँ उपसर्ग कहाँ?

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज

योगदर्शन के कैवल्यपाद के प्रथम सूत्र में भगवान पतंजलिदेव ने–

"**जन्मौषधि मन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः**" कह करके सिद्धियों के पाँच प्रकार बतलाये हैं। उनमें से प्रथम जन्म से होने वाली सिद्धियाँ हैं। जैसे किसी मनुष्य ने तप और स्वाध्याय के फलस्वरूप उत्तम कुल में मनुष्य शरीर ग्रहण किया, उसको जैसा भी दिव्य या अदिव्य शरीर प्राप्त हुआ वह प्राक्तन कर्म विपाक के अनुसार ही उसे वैसा ही प्राप्त हुआ है। यह जन्मजा सिद्धि कहलाती है। अपने जन्म के साथ ही उसको यह सिद्धि प्राप्त हुई और मरणपर्यन्त बनी रहेगी। दूसरे इस उदाहरण को इस प्रकार समझ लेना चाहिए–पक्षियों का आकाश गमन करना उनकी जन्मजा स्वाभाविक सिद्धि है। इसी प्रकार से जल में ऊँची और नीची गति लेना मछली को जन्म से स्वाभाविक सिद्धि है। यही जन्मजा सिद्धि कहलाती है।

इसके बाद दूसरी सिद्धि जिसका भगवान पतंजलिदेव ने औषधियों से होने वाली सिद्धि कहकर जिक्र किया है। दिव्य औषधियाँ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में तत्काल ही एक नया परिणाम पैदा हो जाता है। कितनी ही ऐसी औषधियाँ हैं जिनका सेवन करने से मनुष्य कायाकल्प तक कर डालते हैं। यह कायाकल्प औषधियों की शक्ति से प्राप्त हुआ। इसलिए इसका नाम **औषधिजा सिद्धि** नाम से प्रख्यात हुआ। एक मनुष्य सन्निपात के दुष्परिणाम स्वरूप मरण शैया पर पड़ा हुआ है। एक आयुर्वेद विद्वान कोई रसायन उसको खिलाता है तो वह तत्काल बोलने लगता है। यह सब कुछ उस औषधि का प्रभाव हुआ जिससे कि वह इस प्रकार बोलने लग गया।

यह उस औषधि के बल से ही हुआ क्योंकि वह इस शक्ति से शून्य हो चुका था। इसी हेतु ऐसी सिद्धि को औषधिजा सिद्धि कहते हैं। जैसे–

कायाचित्तेन्द्रियाणामभिष्ट उत्कर्ष सिद्धिः।

क्योंकि सिद्धि का अर्थ ही यह है जो काया, चित्त और इन्द्रियों में यकायक परिणाम दिखलाये। उसके बाद तीसरी सिद्धि भगवान पतंजलिदेव ने मन्त्रजा कहकर वर्णित की है। मन्त्र के जपने से किसी के शरीर में तत्काल ही विशेष परिणाम पैदा होता है। उसी का नाम **मन्त्रजा सिद्धि** है। पाठकों ने बहुत जगह यह देखा होगा कि बहुत से लोग कई–कई प्रकार के रोग हटाने के लिए छोटे–छोटे उपचार किया करते हैं और वे साधारण से किन्हीं

साधु-महात्मा के द्वारा बताये हुए साधारण-साधारण हिन्दी के शब्दों में मन्त्र सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण आदि के समय जप लिया करते है, उनके जपने की विशेष विधि हुआ करती है। उस विधि के साथ जप कर लेने पर उन्हीं मन्त्रों से सिद्धियाँ हो जाया करती है और उन मन्त्रों को जपने से लोगों का कष्ट निवारण होते देखा गया है। इस प्रकार की सिद्धियाँ मन्त्रजा सिद्धियाँ कहलाती है। वेदमन्त्रों के प्रयोग से जो यज्ञ-अनुष्ठान किये जाते है और उनसे बड़े-बड़े दिव्य फल प्राप्त किये जाते है वे भी मन्त्रजा सिद्धियाँ है जिनके फलस्वरूप संसार में बड़े-बड़े अनुपम लाभ देखने में आये है। इस मन्त्रजा सिद्धि के बाद चौथी सिद्धि है – तप से होने वाली सिद्धि।

साधक ज्यों-ज्यों अपने द्वन्द-सहन का अभ्यास बढ़ाता है त्यों-त्यों उसको तप से होने वाली सिद्धियाँ उपलब्ध होती चली जाती है। जैसे-ध्रुव को ध्रुवत्व, तप से प्राप्त हुआ क्योंकि-हमारे आचार्यों का मत है:-

तपसा ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत।

अर्थात्-तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। तप के निरन्तर अभ्यास करने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यही सब सिद्धियाँ **तपोजा सिद्धियाँ** कहलाती है।

इसी प्रकार से योगी जो अपने अभ्यास के बल से सिद्धियाँ प्राप्त करते है वे **समाधिजा सिद्धियाँ** कहलाती है। जिन सिद्धियों का वर्णन योग दर्शन के विभूति-पाद में आया है वे सभी सिद्धियाँ समाधिजा सिद्धियाँ है। सिद्धि शब्द का अर्थ हम पहले ही लिख चुके है-

कायचित्तेन्द्रियाणामभिप्रेत्कर्षः सिद्धिः।

अर्थात्-काया, चित्त एवं इन्द्रियों का मनचाहा उत्कर्ष ही सिद्धि है। जैसे इस समय हमारा शरीर गुण धर्मों के कारण दुर्बल एवं कृश है किन्तु तत्व विजयी योगी अपने संकल्प से शरीर के सभी अभावों की पूर्ति कर लेता है एवं किशोर वय बना रहता है। यह उसकी कायिक सिद्धि है। चित्त की चिन्तन शक्ति से सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाना, यह चित्त की शक्ति का परिणाम है। हमारे आँख की शक्ति इस समय सीमित है, किन्तु योगाभ्यास के द्वारा जब हमारी नेत्र शक्ति का उत्कर्ष होगा तब हम करोड़ों कोस तक देखने लगेंगे एवं कर्णेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक का सुनने लगेंगे। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक की गन्ध ले सकेंगे। त्वचा के द्वारा करोड़ों कोस तक का स्पर्श कर सकेंगे, यही हमारी इन्द्रियों का पूरा-पूरा उत्कर्ष है। जिस इन्द्रिय की जिस तत्व से उत्पत्ति हुई है वह तत्व जहाँ विद्यमान है वहाँ तक उन इन्द्रियों की शक्ति विस्तृत है।

उदाहरणार्थ-जैसे हमारी आँख की उत्पत्ति अग्नि-तत्व से है। अतः ब्रह्माण्ड भर में

जहाँ तक अग्नि है वहाँ तक अवश्य हमारी आँख देखने वाली हो सकती है। जहाँ तक आकाश है वहाँ तक के शब्द हमारे कान सुन सकते है। जहाँ तक वायु है वहाँ तक के दिव्यादिव्य स्पर्श हमारी त्वचा अनुभव कर सकती है। जहाँ तक जल है वहाँ तक के रसों के रस को हमारी रसना (जिह्वा) ग्रहण कर सकती है तथा जहाँ तक पृथ्वी है वहाँ तक के सभी प्रकार के गन्ध को हमारी नासिका ले सकती है। इसी का नाम "**कायेन्द्रियाणामभिध्दुत्कर्ष:**" है।

इन सब बातों को सिद्धि का रूप देकर भगवान पतंजलिदेव ने "योग दर्शन" के विभूति पाद में वर्णित किया है। इसलिये सिद्धि साधक की अपनी शक्ति है।

शक्ति एवं शक्तिमान का सदा ही अभेद रहता है। शक्ति शक्तिवान से भिन्न चीज नहीं है। वह उसके साथ बिल्कुल अभिन्न है। जिस प्रकार पहलवान व्यायाम करके एवं खुराकें खा-खा करके अपने शरीर को बलिष्ठ बना लेता है तो वह उसका बल सदा उसके काम आया करता है और शरीर में परिपूरित रहता है। बलवान से बल अभिन्न है, इसी प्रकार से शक्तिवान से शक्ति अभिन्न है।

अब रही यह बात कि-बहुत से लोगों का यह मत है कि सिद्धि उत्कर्ष में अन्तराय (बाधा) है। इस सम्बन्ध में भगवान पतंजलिदेव ने भी योगदर्शन के विभूति पाद में "**ते समाधावुपसर्गा: व्युत्थाने सिद्धय:**" कह करके प्रातिभ, श्रावण, वेदनादर्श आदि को समाधि के लिए उपसर्ग और उत्थान की स्थिति में सिद्धि कहा है। महर्षि की यह वाणी अवश्य सत्य है क्योंकि सिद्धि प्राप्त व्यक्ति मान-सम्मान के झमेले में पड़कर समाधि-सुख के लिए लापरवाही कर बैठता है। इसलिए इन शक्तियों को महर्षि ने उपसर्ग कहा, किन्तु जिस व्यक्ति ने यम-नियमों की साधना की हो एवं वैराग्य को पूर्णरूपेण जाग्रत कर लिया हो तो वह व्यक्ति मानापमान के झमेले में कभी नहीं पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति आप्तकाम हो जाते है। उनको कोई भी कामना प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। इसलिए उनकी स्थिति में सिद्धियाँ कभी भी उपसर्ग नहीं बन सकतीं। सिद्धि मनुष्य का अपना बल है। जिस प्रकार से अच्छे खाद्य-पदार्थ खाने पर शरीर में बल होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार से साधक को मन की एकाग्रता हो जाने पर सिद्धियाँ प्राप्त हो जाना स्वाभाविक है। साधक को साधना-काल में यदि सिद्धि नहीं हो तो उसकी साधना विफल है। इस प्रकार का साधन-हीन व्यक्ति आत्मपद को नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे:-

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।।

इसी कारण भगवान सदाशिव ने अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है:-

नानामार्गैरतु दुष्प्राप, कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धि मार्गेण लभते, नान्यथा पद्मसंभव।।

(योगशिखोपनिषद)

अर्थात्–मनुष्य चाहे हजारों मार्गों में भटकता रहे, कैवल्य–पद को प्राप्त करना बहुत कठिन है। केवल सिद्धि–मार्ग ही एक ऐसा उत्कृष्ट मार्ग है जिसमें सहज ही वह कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकरण को लिखने की इसलिए ही आवश्यकता पड़ी क्योंकि बहुत से लोगों के मन में इस प्रकार की भ्रान्ति रहती है कि– सिद्धि मार्ग में चलना ही नहीं चाहिए। वस्तुतः बात तो यह है कि ऐसे लोग गतेन्द्रिय होते हैं। वे लोग कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए।

असक्तस्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वति।

क्योंकि वे स्वयं तो सिद्धियों को पा नहीं सकते। इसलिए सिद्धियों की निन्दा करके ही अपने अभिमान की पुष्टि कर लिया करते हैं। इस विषय में एक छोटी सी लोकोक्ति है कि–"लोमड़ी के अंगूर खट्टे"। बात साधारण सी है–एक लोमड़ी ने ऊँचे वृक्ष पर चढ़े हुये अंगूरों की बेल को देखकर अंगूर को खाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह उनको खा नहीं सकी तो निराश होकर बैठ गई। उसकी इस स्थिति को देखकर किसी ने कहा 'लोमड़ी! तुम ये अंगूर क्यों नहीं खा लेती?' तो उसने उत्तर दिया कि 'भाई खा तो जरूर लेती किन्तु ये अंगूर खाने लायक नहीं है, खट्टे हैं।' यही दशा उन लोगों की है जो बिचारे साधना नहीं कर सकते। खाट पर पड़े रहकर उनको आराम करने की आदत पड़ गयी है। उनको सिद्धि होगी ही नहीं। अतः सिद्धि की निन्दा करके ही अपने मन को सन्तुष्ट कर लेते हैं। अतः विज्ञ पाठकों को चाहिए कि वे अपनी साधना को दृढ़ता के साथ उत्कृष्ट बनायें ताकि सब प्रकार के भय नष्ट हो जायें।

550 वर्ष से समाधि में लामा योगी

हिमाचल प्रदेश के लाहुल स्पीति के एक गाँव में एक योगी आज भी समाधि में लीन है। उनके बाल और नाखून बढ़ जाते हैं और शारीरिक वजन में भी परिवर्तन हो जाता है। बौद्ध–धर्मावलम्बी इस योगी का नाम है संघा तेनजिंग। उनके समाधिस्थ होने का पता 1975 में उस समय लगा जब उस क्षेत्र में भयंकर भूकम्प आया और बचाव कार्य के लिए भारत–तिब्बत सीमा पुलिस के जवान इस क्षेत्र में पहुँचे। मलबा हटाये जाते समय जब खून बहते हुए जवानों ने देखा तो सावधानीपूर्वक कार्य को अंजाम देते हुए उन्हें समाधिस्थ अवस्था में बैठे उक्त योगी के उन्हें दर्शन हुए। उनके सिर पर चोट लगी थी, जिसमें रक्तस्राव हो रहा था।

स्थानीय छोकत्सा नामक ग्रुप के अनुसार ये योगी लामा तब से इस स्थान पर साधनारत हैं जब इस क्षेत्र में केवल सॉर्पो–भिक्षुओं का ही बसेरा था। तिब्बत के धर्मगुरु श्री दलाई लामा से सलाह–मशविरा करने के बाद पाँच शताब्दियों से समाधिस्थ इस योगी के लिए एक छोटा–सा शीशे का घर बना दिया गया है, जहाँ वे पूर्व मुद्रा में ही अवस्थित हैं। उन्हें एक शक्ति सम्पन्न लामा माना जाता है और नित्य ही उनका पूजा–अर्चन होता है।

उल्लेखनीय है कि उक्त योगी पर न तो किसी पदार्थ का लेप लगा हुआ है और न ही उनके शारीरिक क्षय को बचाने का कोई अन्य उपाय ही किया गया है। उनके मृत शरीर की विद्यमानता इस बात का प्रमाण है कि वे उच्चकोटि के योगी साधक हैं।

परम पद का अधिकारी

वे कर्म जिनका फल इसी जन्म में मिला करता है।

आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

मनुष्य अपने जीवन में एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता। चित्त में कर्माशय के रूप में कर्म वासना रहती है, जिन्हें संस्कार का नाम दिया जाता है। इन्हीं संस्कारों के अनुसार मनुष्य की वृत्ति हुआ करती है। श्री मद्भगवत्गीता एवं पातंजल योग दर्शन के अनुसार जीवन में मनुष्य से तीन प्रकार के कर्म बनते है। एक पाप के कर्म, दूसरे पुण्य के कर्म, तीसरे पुण्य और पाप के मिश्रित कर्म। परंतु योगी का इनमें से कोई कर्म नहीं बनता है। क्योंकि योगी में अविद्या आदि क्लेश नष्ट हो जाते है। इन क्लेशों के रहते हुए ही मनुष्य मोह, अज्ञान, राग, द्वेष तथा मृत्यु के भय से ग्रसित रहा करता है तथा नाना प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त रहता है। मनुष्य की योनि भोग योनि एवं कर्म योनि दोनों ही है। एक तरफ तो मनुष्य अपने पूर्व कृत कर्मों के विपाक के रूप में सुख और दुःख भोगा करता है तथा चित्त की वृत्तियों के अनुसार नये-नये कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है। इस प्रकार से एक ही समय में दोनों प्रकार की क्रियाओं में अर्थात् भोग और कर्म में लगता रहता है। कर्म फल को भोग लेने के बाद चित्त में उसकी वासना रह जाती है और अनुकूल समय पाकर वह वासना रूपी वृत्ति मनुष्य को पुनः कर्म से जोड़ती है। जैसे फल खोलने पर फल का बीज रह जाता है पृथ्वी पर पड़ा हुआ वह बीज कालान्तर में जलवायु आदि अनुकूल परिस्थितियों को पाकर फिर पृथ्वी में उग आता है और पौधे के रूप में विकसित होने लगता है। यही दशा हमारे चित्त रूपी भूमि की है कर्माशय में पड़ा हुआ बीज रूपी संस्कार जब तक चित्त में रहते है तब तक कर्म बनते ही रहेंगे। अच्छे और बुरे सभी कर्मों का फल मनुष्य को भोगना ही पड़ता है। **''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतम् कर्म शुभाशुभम्।''**

मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है किंतु फल भोगने में स्वतंत्र नहीं है। किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। भौतिक विज्ञान के अनुसार हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। "Every action has its Reaction equal and opposite".

कर्म की प्रतिक्रिया को ही फल के रूप में माना जाता है। कर्म का जाल मनुष्य के जीवन में बहुत ही व्यापक रूप में बिछा हुआ है। इसे ही ''भव जाल'' कहते है। गीता में इस भव जाल को काटने के लिए उपाय के रूप में भगवान का उपदेश है-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

अर्थात ध्यान योग के द्वारा बुद्धि योग से सम्पन्न हो जाता है वह पाप और पुण्य के प्रभाव से आगे निकल जाता है। इसलिए हे अर्जुन तू ध्यान योग का वरण कर। क्योंकि कर्म करने पर भी उसका फल न मिले यही कर्मों की कुशलता है। इसे ही योग कहते है।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि कोई भी व्यक्ति बिना योग को अपनाये पाप–पुण्य के जाल से नहीं निकल सकता। योग साधना का एक ही लक्ष्य है कि जीवन में जो संस्कार भुगतान में आ रहे है उनका कुशलता पूर्वक भुगतान हो जावे तथा कोई भी ऐसा कोई नया संस्कार न बने जो मनुष्य को पतन की ओर ले जाये।

योग दर्शन में पतञ्जलि देव जी महाराज ने संस्कारों की चार अवस्थाओं का एक सूत्र के द्वारा निरूपण किया है–

'अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु विच्छिनोदाराणाम्'

अर्थात् कर्म संस्कारों की चार अवस्थायें है जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदारावस्था में रहा करते है। प्रथम प्रकार के संस्कार प्रसुप्त अवस्था में अर्थात् चित्त भूमि में दबे हुए पड़े रहते है। जिस प्रकार भूमि पर पड़ा हुआ बीज जलवायु की अनुकूलता के न पाने के कारण पड़ा रहता है। दूसरे प्रकार के संस्कार भुगतान के आकर 'तनु' अवस्था में आ जाते है। जप, ध्यान तथा तपश्चर्या के द्वारा संस्कारों की उग्रता को सौम्य बना कर 'तनु' अवस्था में लाये जाते है। इसे योग साधना में संस्कारों के 'तन्वीकरण' की प्रक्रिया कहते है। योग दर्शन के साधन पाद में क्रिया–योग का वर्णन हुआ है। इसका फल बताते हुये पतञ्जलि जी महाराज कहते है कि तप, स्वाध्याय एव ईश्वर प्राणिधान रूप क्रिया–योग से समाधिभाव की पुष्टि होती है तथा क्लेशों का तन्वीकरण होता है जिससे संस्कारों का प्रभाव क्षीण हो जाता है जो कालान्तर में निर्बीज समाधि के द्वारा दग्ध भाव को प्राप्त करा दिये जाते है। इसी दशा में प्रारब्ध के संस्कारों को भी बदल दिया जाता है।

तीसरे प्रकार के संस्कार विच्छिन्नावस्था के होते है। ये संस्कार बीच–बीच में टूटे हुये अथवा दबे हुए रहते है। जैसे राग संस्कार के समय द्वेष के संस्कार दबे हुये होते है तथा द्वेष के समय राग के संस्कार दबे हुये रहते है। चौथे उदारावस्था के संस्कार वे होते है जो भुगतान के लिये स्थूलावस्था में आ गये है। इन्हें अब भोगना ही पड़ता है। संस्कार ही चित्त के मल है। चित्त के मल को निर्मल करना ही योग साधना का लक्ष्य है। ये मल ही चित्त के दोष या रोग कहलाते है। इन दोषों व संस्कारों को पहले तप, जप के द्वारा धो लें। जैसे अत्यन्त मलिन वस्त्र को पहले वाशिंग पाउडर, सोडा आदि में डालकर धोया जाता है जो शेष मल रह जाये उन्हें पुनः अन्य उपायों से दूर कर दिया जाता है। क्लेशों या मल को प्रथम 'ध्यान हेयास्तद् वृत्तय' इस सूत्र के अनुसार ध्यानयोग के उपाय से दूर करना चाहिए। जो सूक्ष्ममल रह जाये उसके लिए पतञ्जलि जी महाराज ने दूसरा सूत्र दिया है – **'ते प्रति प्रसवहेयाः सूक्ष्माः'** अर्थात् जो मलों के बीज रूप संस्कार है उन्हें कारण शरीर में संयम करके 'दग्ध बीज' कर

दिया जाता है। इसी के लिए भगवान ने गीता में– **'ज्ञानाग्नि दग्धकर्माणि तमाहुः पण्डितम् बुधाः'** कहकर बताया है। इसके पश्चात् ही चित्त पूर्णतया निर्मल होता है कोई भी संस्कार चित्त में शेष नहीं रहता। तभी योग जन्म मरण के क्रम को तोड़ डालता है।

कर्माशय में पड़े हुये संस्कारों का भुगतान इस जन्म में भी होता है तथा कुछ का जन्मान्तर में होता। जिन कर्मों का फल इसी जन्म मे मिले उन्हें 'दुष्ट जन्म वेदनीय' कर्म कहते है तथा जिन कर्मों का फल भुगतान इस जन्म में न होकर अन्य जन्म में मिले उन्हें अदृष्ट जन्म वेदनीय कर्म कहते हैं। कुछ ऐसे पुण्य व पाप होते हैं जो अत्यन्त तीव्र संवेग से होते है। उनका फल इसी जन्म में मिल जाता है। अत्यन्त पुण्य कर्मों के अन्तर्गत तीव्र संवेग से किये गये गुरु मन्त्र का जाप, क्रिया–योग रूपी तीव्र अनुष्ठान तथा समाधि का दृढ़तर अभ्यास, सिद्ध पुरुषों एवं गुरु जनों की सेवा व भक्ति से जो कर्माशय बनता है उनका इसी जन्म में फल मिल जाता है। ईश्वर की तीव्र आराधना का फल भी इसी जन्म में मिल जाता है। अत्यन्त क्रूर एवं पाप कर्मों का भी फल इसी जन्म में मिल जाता है। प्राणियों की हत्या करना, विश्वास में आये हुये प्राणि से विश्वास घात करना, महापुरुषों व ध्यान योगियों का पुन:–पुन: अपमान व तिरस्कार करना आदि कुछ ऐसे कर्म हैं जिनका इसी जन्म में फल मिलता है। आत्म शक्ति सम्पन्न व्यक्ति से जो निरन्तर द्रोह करता है उसे भी सद्य: पाप कर्म का विपाक मिल जाता है।

मनुष्य को पाप कर्म से सदा से दूर रहना चाहिये तथा ध्यान योग रूपी पुण्य को अर्जित करते रहना चाहिए। जो ध्यान योग में आरूढ़ रहते हैं उनका पुराना कर्म संस्कार नष्ट हो जाता है तथा नये कोई संस्कार नही बनते। गीता में भगवान ने इसी बात की पुष्टि एक श्लोक के द्वारा की है–

योग संन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।।

अर्थात् जो ध्यान योग के प्रभाव से कर्मफल को त्याग देते हैं तथा विवेक ज्ञान से जिनके संशय नष्ट हो चुके हैं ऐसे आत्म ज्ञानवान योगी को कर्म कदापि बन्धन में नहीं डाल सकते हैं। ऐसा योगी निर्मल अन्त:करण होकर परम पद का अधिकारी बन जाता है। फिर उसे जन्म–मरण के बन्धन में नही बंधना पड़ता। वह मुक्ति या अमृतपद का अधिकारी बन जाता है।

ooo

उपनिषदों में यदि कोई एक ऐसा शब्द है जो वज्र वेग से अज्ञान राशि के ऊपर पतित होता है, उसे बिल्कुल उड़ा देता है, तो वह है – "अभी:" अर्थात् निर्भयता।

— स्वामी विवेकानन्द

ईश्वर कौन ?

डा. जे.पी. शर्मा
पौंटा साहिब, (हि. प्र.)

कई बार अनायास ही प्रश्न उठता है कि ईश्वर क्या है तथा ईश्वर कौन है? क्या हम हर सत्तासम्पन्न पुरुष को ईश्वर मानें? उसकी योग्यता क्या है? उसकी सत्ता क्या है? ईश्वर कहाँ रहता है तथा ईश्वर हमसे चाहता क्या है?

महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में बड़े सुन्दर शब्दों में ईश्वर के लक्षण बतलाये है। यथा–

''क्लेश कर्म विपाका शयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः''

अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय– इन चारों से जो सर्वथा नहीं है, पुरुष विशेष, जो समस्त पुरुषों में उत्तम है, वह ईश्वर है।

व्याख्या करते हुए बतलाया है कि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश– ये पाँच 'क्लेश' है। यथा–

''अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः''

अर्थात् मनुष्य को इन पाँचों क्लेशों के कारण ही जीवन–मृत्यु के संसार चक्र में बार–बार जन्मना तथा मृत्यु प्राप्त करना पड़ता है। इन महादुखदायक क्लेशों को ही भव–सागर कहा गया है। पाँचों क्लेश चित्त में चार अवस्थाओं में रहते है। यथा–

''अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाशणाम्''

अर्थात् प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं में रहते है, जिनका मुख्य कारण अविद्या है।

चित्त में रहते हुये भी जो क्लेश अपना कार्य नहीं करता, उसे प्रसुप्त कहा गया है। प्रलयकाल तथा सुषुप्ति में चारों ही क्लेशों की प्रसुप्त अवस्था रहती है। यौगिक क्रियाओं द्वारा क्लेशों की शक्ति क्षीण कर दी जाती है, उस हीन शक्ति वाले क्लेश को तनु कहते है। जब कोई क्लेश उदार होता है, उस समय दूसरा क्लेश दब जाता है, वह उसकी विच्छिन्नावस्था होती है। जैसे राग की उदार–अवस्था के समय द्वेष दब जाता है तथा द्वेष की उदारावस्था के समय राग दब जाता है। जब क्लेश अपना कार्य पूर्णतया कर रहा होता है, उस समय उसकी उदारावस्था कहलाती है।

''अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।।''

अर्थात् अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मा में, नित्य पवित्र, सुख और आत्मभाव

की अनुभूति ही **अविद्या क्लेश** है।

मनुष्य शरीर नाशवान है तथा अनित्य है फिर भी उससे हम राग–द्वेष कर लेते हैं तथा नित्य समझने लगते हैं, यही अनित्य में नित्य की अनुभूति अविद्या है। इसी प्रकार हाड़, मॉस, मज्जा आदि अपवित्र धातुओं के समुदाय रूप अपने और स्त्री आदि के शरीरों को अपवित्र समझते हुये भी जिसके कारण मनुष्य अपने शरीर में पवित्रता का अभिमान कर लेता है तथा स्त्री–पुत्र के शरीरों से प्यार करता है, यह अपवित्र में पवित्र की अनुभूति है। सभी शारीरिक भोग दु:ख स्वरूप हैं। परंतु मनुष्य क्षणिक सुख के लिये उनके भोग में प्रवृत्त बना रहता है, यही दु:ख में सुख की अनुभूति रूप अविद्या है।

हमारा जड़ शरीर आत्मा नहीं है, तथापि हम अपने शरीर को अपना स्वरूप माने रहते हैं, आत्मा इससे सर्वथा असंङ्ग और चेतन है। इसका नाम अनात्मा में आत्मभाव का अनुभूति रूप अविद्या है।

''दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।।''

अर्थात् दृक–शक्ति और दर्शन–शक्ति दोनों का एक रूप हो जाना ही अस्मिता है। दृक–शक्ति अर्थात् दृष्टा–पुरुष और दर्शन शक्ति अर्थात् बुद्धि दोनों ही सर्वथा भिन्न और विलक्षण हैं। दृष्टा चेतन है तथा बुद्धि जड़ है। इनकी एकता हो ही नहीं सकती। तथापि अविद्या के कारण दोनों की एकता सी हो रही है। इसे ही दृष्टा और दृश्य का संयोग कहते हैं। यही प्रकृति और पुरुष के स्वरूप को उपलब्धि का हेतु माना गया है।

''सुखानुशयी रागः।।''

अर्थात् सुख की अनुभूति के पीछे रहने वाला क्लेश ही राग है। अत: जब मनुष्य अनुकूल पदार्थ की प्राप्ति में सुख का अनुभव करता है उसे ही राग कहा गया है।

''दु:खानुशयी द्वेषः।।''

दु:ख की प्रतीति के पीछे रहने वाला क्लेश द्वेष कहलाता है। मनुष्य जब प्रतिकूल परिस्थिति में दु:ख का अनुभव करता है उसे द्वेष कहते हैं।

''स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः।।''

मृत्यु का भय परम्परागत स्वभाव से, मूढ़ों की भाँति विवेकशील पुरुषों में भी विद्यमान देखा जाता है, वह मरणात्मक रूप क्लेश, ''अभिनिवेश'' है। कोई नहीं चाहता कि मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं, सभी चिरजीवी रहना चाहते हैं। अत: मृत्यु भय सभी जीवधारियों को हर क्षण लगा रहता है। साधारणत: मनुष्य चार प्रकार के कर्म करता रहता है जिनके फलस्वरूप संस्कारों का निर्माण होता है। संस्कारों के भुगतान के लिये हर जीव जन्मधारण करता है जिसके संस्कार शेष नहीं होते उसे जन्म लेने की आवश्यकता केवल जनहिताय होती है। योगी के कर्म अशुक्ल या अकृष्ण बन जाते हैं। योगी के अतिरिक्त मनुष्यों के (1) शुक्ल

अथवा पुन्य कर्म (2) कृष्ण अर्थात् पाप कर्म (3) शुक्ल–कृष्ण अथवा पुन्य–पाप से मिश्रित होते है। चौथे प्रकार के कर्म पुन्य तथा पाप से रहित होते है। कर्म फल का नाम विपाक कहलाता है। कर्म–संस्कारों के समुदाय को आशय कहते है। सृष्टि के समस्त जीवों का इन चारों से अनादि सम्बन्ध है। मुक्त जीवों का संबंध विच्छेद हो जाता है। ईश्वर का तो कभी भी इनसे संबंध न था और न होने वाला है। इस कारण उन मुक्त पुरुषों से भी ईश्वर विशेष है। इसी कारण महर्षि पतंजलि ने "पुरुष विशेष" का प्रयोग किया है।

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीजम्।।"

अर्थात् उस ईश्वर मे सर्वज्ञता का बीज अर्थात् ज्ञान निरतिशय है। जिससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु हो, उसे सातिशय तथा जिससे बड़ा कोई न हो उसे निरतिशय कहते हैं। अत ईश्वर ज्ञान की अवधि है, उसका ज्ञान सबसे बड़ा है, उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का ज्ञान नही है। इसलिये ईश्वर को निरतिशय कहा गया है। ईश्वर ज्ञान की पराकाष्ठा है उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, यश और ऐश्वर्य आदि की पराकाष्ठा का आधार भी उसी को समझना चाहिए।

"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।।"

वह ईश्वर सब के पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है। ब्रह्म सर्ग के आदि में उत्पन्न होने से सबका गुरु है परंतु ब्रह्म जी काल से अवच्छेद हैं। गीता में कहा गया है–

सहस्त्र युग पर्यन्त महर्यदब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदोजनाः।।

अर्थात् ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्यगी तक की अवधि वाली जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं। ईश्वर स्वयं अनादि और सबका आदि है। यथा–

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।

(गीता 10/2)

मेरी उत्पत्ति को अर्थात् लीला से प्रकट होने को न देवता जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते है। क्योंकि मैं देवताओं और महर्षियों का आदि कारण हूँ।

यो माम जमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापेः प्रमुच्यते।।

(गीता 10/3)

अर्थात् श्री कृष्ण भगवान कहते हैं, जो मुझको अजन्मा अथवा जन्म रहित, अनादि

और लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में यथार्थ ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

ईश्वर काल से सीमा से सर्वथा अतीत है, वहाँ तक काल की पहुँच नहीं है। ईश्वर काल का भी काल अथवा महाकाल है। ईश्वर हमारे पूर्वजों का भी गुरु अर्थात् महागुरु है। सभी को शिक्षा देने वाला तथा सभी से बड़ा है।

''तस्य वाचकः प्रणव।।''

उस ईश्वर का नाम प्रणव अथवा ओंकार है। नाम और नामी का सम्बन्ध अनादि और बड़ा ही घनिष्ठ है। इसी कारण नाम जप की महिमा सन्तों ने खुले मन से गाई है। नाम चाहे जैसे भी गाया जाये, जप का फल उत्तम ही मिलता है। यथा– **''उल्टा नाम जपा जग जाना, वाल्मीक भये ब्रह्म समाना''**। अर्थात् अज्ञानतावश वाल्मीक जी ने मरा–मरा शब्द का जप किया और जपते–जपते वाल्मीक जी ब्रह्मर्षि कहलाये। जिन्होंने श्रीराम जन्म से दस–हजार वर्ष पूर्व ही रामायण की रचना कर दी थी।

''कलयुग केवल नाम अधारा, सुमिर सुमिर नर उतरहियारा।।''

कलयुग के प्रभाव से मनुष्य केवल राम–नाम जप कर ही संसार, सागर अथवा भव सागर से मुक्त हो सकते हैं।

योगेश्वर लीलाधारी भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। यथा–

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

(गीता 10/25)

मैं महर्षियों में भृगु और शब्दों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ। सब प्रकार के यज्ञों में जप यज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूँ। 'ॐ' उस ईश्वर का वेदोक्त नाम है। यथा–

'ॐ' तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रि विधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

(गीता 17/23)

अर्थात् ॐ, तत्, सत् ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का नाम कहा है, उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये। अतः मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण इत्यादि, सभी ईश्वर के नाम हैं और भी ईश्वर के हजारों नाम हैं।

''तज्जपस्तदर्थभावनम्''

(योगदर्शन, समाधिपाद–1/28)

अतः ईश्वर की प्राप्ति के लिए मनुष्य को हर पल ओंकार (ॐ) का निरंतर जप और उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। ईश्वर के नाम जप तथा उसके निरंतर चिन्तन को ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की शरणागति कहते हैं। यथा–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरूध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणामास्थितो योमधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

(गीता 8/12–13)

अर्थात् इन्द्रियों के द्वारों को रोककर, मन को हृदय प्रदेश में स्थिर करके, जीते हुये मनके द्वारा प्राण को मस्तिष्क में स्थापित करके, परमात्मा संबंधी योगधारणा में स्थिर होकर जो पुरुष "ॐ" इस अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। भगवान कृष्ण ने अपने मुखारविन्द से सगर्वित शब्दों में स्पष्ट किया है, मैं जल से रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, आग में तेज हूँ, सभी भूत प्राणियों की आत्मा हूँ, जहां तक सृष्टि की रचना है, मैं कण–कण में व्याप्त हूँ। धनवानों का धन हूँ, ज्ञानियों मे ज्ञान हूँ, वनस्पतियों में, स्थावर तथा जंगम में सभी जगह समाया हूँ। परम पिता परमात्मा हर आत्मा से अपेक्षा करता है कि हम सब सद्मार्ग पर चलते हुये अपने–अपने धर्म में रहकर कर्म करते रहें। उसे सदैव स्मरण करते रहें। भगवान भोजन के भूखे नहीं है, वह हमारी आत्मा के भाव के भूखे हैं। शुद्ध भाव से उसे जो याद करता है, भगवान उसी के बन जाते हैं। नरसी महता, मीरा बाई, कबीर, रविदास, सूरदास तथा गुसाईं तुलसीदास अनेकों सन्तों ने ईश्वर की कृपाओं का अमृतपान किया है।

हम सब के सद्गुरु सर्व समर्थ योग योगेश्वर भगवान ने बार–बार हमें यही कहा है कि हम सब प्रति दिन नियमित रूप से अपने मोक्ष दायी गुरुमंत्र का जप ध्यानपूर्वक करते रहें, अपने मन को नियंत्रित करके अन्तर्मुखी हो जायें। तभी हमें यथोचित फल की प्राप्ति हो सकेगी।

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" (पातंजलि योग दर्शन 1/1)

उस साधन से अर्थात् ईश्वर–प्राणिधान (ईश्वर की शरणागति) से विघ्नों का अभाव और अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। तन्मयता से हम आत्म विभोर होकर सद्गुरु के पाद–अंगुष्ठ का ध्यान–चिन्तन करते रहें तभी हम अपने जीवन को सफल बना सकेंगे तथा उनका सानिध्य प्राप्त कर पायेंगे।

श्रद्धावान् लभते

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

व्यक्ति के जीवन में श्रद्धा का विशेष स्थान है। वह श्रद्धा के आधार पर ही धैर्यवान भी हो जाता है। गीता में भगवान ने कहा–

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः सयतेन्द्रियः।
ज्ञान लब्धा परांशन्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

अर्थात् जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किया है, वही पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके भगवत् प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। जबकि श्रद्धा विहीन पुरुष पथ से भ्रष्ट हो जाते है। इसीलिए कहा गया कि– **श्रद्धा मातेन् पाति।**

साधन के क्षेत्र में अथवा किसी अन्य क्षेत्र में कार्य करने वाले पुरुष के लिए श्रद्धा और धर्म आवश्यक है। जिसका कोई समाधान नहीं है उसका फल समाधान धर्म है। श्रद्धा के आधार पर ही जंगल में रहने वाला भील पुत्र एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा। उसका परिणाम यह हुआ कि भौकते कुत्ते के मुँह को बाणों से भर दिया। क्योंकि वह उसके अभ्यास की एकाग्रता को भंग कर रहा था। जैसे ही कुत्ता पांडवों के पास बाणों से भरे हुए मुँह के साथ पहुँचा, पाण्डवों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कौन ऐसा चतुर धनुर्धर है जिसने कुत्ते के मुँह को बन्द कर दिया। वे गुरु द्रोणाचार्य के साथ एकलव्य के आश्रम में आये। दूर से ही उन लोगों ने देखा कि एक बालक मूर्ति के समक्ष धनुष से लक्ष्य सिद्धि हेतु अभ्यास कर रहा है। आश्रम पर पहुँचने पर गुरुदेव ने देखा कि यह तो वही बालक है जो धनुर्विद्या को प्राप्त करने के लिए मेरे पास आया था। मैंने शिक्षा देने से इनकार कर दिया था। किंतु इसकी श्रद्धा ने इसे अपने लक्ष्य तक ला दिया। जबकि अर्जुन को ससार का सबसे श्रेष्ठ धनुर्धर होने की घोषणा कर चुका हूँ। द्रोणाचार्य का मन उसके प्रति अगाध श्रद्धा से भर गया। किंतु उसे प्रकट नहीं कर पा रहे थे। वास्तव में शिष्य किसी भी जाति या वर्ण का हो यदि उसकी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा है तथा वह जितेन्द्रिय है तो निश्चय ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। मिट्टी की मूर्ति के अन्दर न शिव होते न दुर्गा लेकिन अन्तर्मन के शिव वहाँ स्फूर्त हो जाते है। उससे संवाद प्रारम्भ हो जाता मूर्ति में भी शक्ति श्रद्धा के अनुसार दिखने लगती है। मूर्ति जीवन्त होकर बोलती, चलती तथा साधक को उपदेश करती है। साधन के सोपान निर्धारित करती है।

हमारे मनीषियों ने इसी श्रद्धा के आधार पर ही स्वदेश के अतिरिक्त विदेशों में भी ज्ञान के गंगा की अजस्र धारा प्रवाहित किया है। उस प्रवाह का आनन्द ग्रहण कर ही भारत देश को धर्म प्राण देश की संज्ञा से विभूषित किया है। यहाँ आकर योग के गूढ़ रहस्यों को जानने तथा सीखने का प्रयास किया है। पलब्टन वीनी यात्री ह्वेनसांग तथा मुगलकालीन बहुत से राजाओं

ने भी भारत का लोहा माना तथा ज्ञान की धारा से अपने को जोड़कर आध्यात्म रस का आनन्द प्राप्त किया है।

पातंजलि योग के समाधि पाद में सूत्र है– **''सतु दीर्घ काल नैरन्तर्यसत्कारा सेवितो दृढ़भूमि:।''**

अर्थात् दीर्घकाल तक, निरन्तर और श्रद्धा पूर्वक सेवन करने से दृढ़भूमि बनती है।

जंगल में रहने वाली मतंग ऋषि की शिष्या भीलनी इसका साक्षात् उदाहरण है। वह भगवान राम के आने की वाट को रोज निहारती थी। शबरी अपने आश्रम के रास्ते को रोज लीपती–पोतती, झाड़ू बुहारू करती थी। क्योंकि उसके ईष्ट राम इसी किसी रास्ते से आयेंगे। ऐसा विश्वास एव श्रद्धा अपने उस ईष्ट के प्रति था। उस श्रद्धा और विश्वास का परिणाम हुआ, एक दिन भगवान राम शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी गद्‌गद् हो गयी। उसका लीपना–पोतना ही वास्तविक पूजा हो गयी। सबरी परम गति को प्राप्त हुई।

मेरे पूज्य साधक भाइयो हमारे साधको मे भी बहुत से भाई ऐसे ही सिद्धगुफा सवाई आश्रम में लीपा–पोती करके ही कल्याण के भागी हुए तथा आज भी हो रहे है। साधको के सम्पर्क मे आने से अन्य जन भी लाभान्वित हो रहे है। चाहे वह भौतिक कामना लेकर आ रहे हैं या आध्यात्मिक कामना। दोनों ही सफल मनोरथ वाले बनते चले जा रहे हैं।

इसलिए यदि गीता के इस श्लोक का ही चिन्तन मनन करते हुए गुरोपदिष्ट कार्यों को करते रहे तो निश्चय ही जल्दी न सही दीर्घकाल के बाद लक्ष्य प्राप्त करने मे सफलता अवश्य प्राप्त होगी। ऐसा दृढ़ विश्वास है। वैसे साधक बन्धुओं ने शक्तिपात दीक्षा प्राप्त कर वैसे ही जो जहाँ है। वही शक्ति का केन्द्र बिन्दु बना दिखता है। प्रभु से ऐसा ही बार–बार अहर्निश निवेदन है। अंत में चरण दास की गुरु के प्रति श्रद्धा के भाव को आत्मसात् करने की आवश्यकता है–

प्रेम पगावन ज्ञान दे, योग जितावन हार।
चरणदास की बिनती सुनियों बारम्बार।।
तुम दाता हम माँगता श्री शुकदेव दयाल।
भक्ति दई व्याधा गयी मेते जग जंजाल।।
किसी काम के थे नहीं कोउ न कौडी देह।
गुरुदेव जब कृपा करी, भई अमोलक देह।।

श्रद्धा की और भी बहुत सी कथाएं हैं। जिससे चमत्कारी कार्य समय–समय पर होते रहे है। आज भी व्यक्ति की निजी जीवन मे भौतिक लालसा की भी पूर्ति होती है। इसलिए इस साधक ऐसे शक्ति पुंज को स्त्रोत को प्राप्त हुए, आत्मकल्याण पर अग्रसर रहें।

भक्ति

स्वामी विवेकानन्द

संसार मे जितने धर्म है उनकी उपासना प्रणाली मे विभिन्नता होते हुए भी वे वस्तुत एक ही है। किसी-किसी स्थान पर लोग मन्दिरो का निर्माण कर उन्ही मे उपासना करते है, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते है, किसी-किसी स्थान मे लोग मूर्ति-पूजा करते है तथा कितने ही आदमी ईश्वर के अस्तित्व मे ही विश्वास नही करते। ये सब ठीक है, इन सबमे प्रबल विभिन्नता विद्यमान है, किंतु यदि प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल तथ्य, उनके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें, तो वे सर्वथा अभिन्न है। इस प्रकार के भी धर्म है जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नही स्वीकार करते। यही क्या, वे ईश्वर का अस्तित्व भी नही मानते। किंतु तुम देखोगे, ये सभी धर्मावलम्बी साधु-महात्माओं की ईश्वर की भाँति उपासना करते है। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मो मे है, कही ईश्वर भक्ति है तो कही महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है। सभी जगह इस भक्ति-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रभाव देखा जाता है। ज्ञान-लाभ की अपेक्षा भक्ति-लाभ करना सहज है। ज्ञान-लाभ करने मे कठिन अभ्यास और अनुकूल परिस्थितियो की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एव रोगशून्य न होने से तथा मन सर्वथा विषयो से अनासक्त न होने से योग का अभ्यास नही किया जा सकता, किंतु सभी अवस्थाओं के लोग बड़ी सरलता से भक्ति साधना कर सकते है। भक्तिमार्ग के आचार्य शाडिल्य ऋषि ने कहा है कि ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग को भक्ति कहते है। प्रह्लाद ने भी यही बात कही है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन भोजन न मिले तो उसे महाकष्ट होगा। सन्तान की मृत्यु होने पर उसको कैसी यन्त्रणा होती है! जो भगवान के प्रकृत भक्त है, उनके भी प्राण भगवान के विरह मे इसी प्रकार छटपटाते है। भक्ति मे यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति:- 'हे भगवन् तुम्हारे असंख्य नाम है और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नही। इसे सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नही करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्न नामों में उपासित होते है, किंतु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव मे कोई भेद नही है। कुछ लोग सोचते है कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधनाप्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम

उपाय बताते है। किंतु यदि दोनों की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाये तो पता चलेगा कि दोनों ही एक है। शैव शिव को ही सर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली समझते है। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते है, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत मे सबसे अधिक शक्तिशालिनी है। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नहीं करता, किंतु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ मे बड़ा बाधक है-जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है-

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः।।

-मै जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति है, वे ही जानकीपति है, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व है। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरो से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त संसार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों मे विभिन्नता है। ईश्वर करे, संसार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो संसार का सामजस्य नष्ट होकर विशृखलता आ जायेगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल जाये तो उसको उसी के भावानुरूप मार्ग पर अग्रसर करने मे सहायक हो, तो वह मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होगा। उसको उन्हीं भावों के विकास की साधना करनी होगी। जो व्यक्ति जिस पथ पर चलने की इच्छा करे, उसे उसी पथ पर चलने देना चाहिए, किंतु यदि हम उसे दूसरे मार्ग पर घसीटने का यत्न करेंगे तो वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी खो बैठेगा, वह किसी काम का न रह जायेगा। जिस भाँति एक मनुष्य का चेहरा दूसरे के चेहरे से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी मनुष्य को अपनी प्रकृति के ही अनुसार चलने देने मे क्या आपत्ति है? एक नदी एक ओर बहती है-यदि उसके बहाव को ठीक कर नदी को उसी ओर बहाया जाय तो उसकी धारा अधिक तेज हो जायेगी और वेग बढ़ जायगा। किंतु यदि स्वाभाविक प्रवाह की दिशा को बदल कर उसे दूसरी दिशा में प्रवाहित करने का यत्न किया जाय तो तुम यह परिणाम देखोगे कि उसका परिमाण क्षीण हो जायगा और उसका वेग भी कम हो जायेगा। यह जीवन एक बड़े महत्व की चीज है, अतः इसे अपने-अपने भाव के अनुसार ही चलाना चाहिए। भारत मे विभिन्न धर्मों में कभी विरोध नहीं था, वरन् प्रत्येक धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करता रहा, इसीलिए यहाँ अभी तक प्रकृत धर्मभाव बना है। इस स्थान पर यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि विभिन्न धर्मों मे तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मंत्र ही मेरे पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है, और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता, तो मेरा अनुगमन करता।

यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने

विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति क्यों होती? सब लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग और चेष्टाएं हुई, किंतु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तलवार के जोर से जिस स्थान पर लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने की चेष्टा की गयी, वहाँ न एक की जगह दस धर्मों की उत्पत्ति हो गयी- इतिहास इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म नहीं हो सकता। क्रिया तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मननशील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न सकता। इतना ही क्यों, वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मननशील प्राणी है, वह मनयुक्त है। 'मन्' धातु से मनुष्य शब्द बनता है, मनुष्य शब्द का अर्थ है मननशील। मननशीलता की शक्ति के लोप हो जाने पर मनुष्य और एक साधारण पशु में कोई अन्तर न रह जायेगा। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में घृणा का उद्रेक होगा। ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में एक अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे-बड़े का अन्तर है। परंतु यदि सब जीवन के अपने-अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मों में अच्छे-अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है- जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के आधार ही सब धर्मों की भित्ति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर-शुद्धि हो सकती है, आभ्यान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गर्हित कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल मद्यपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य-पालन के साथ-साथ दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही धारणा विद्यमान है कि इसके साथ मत खाओ, उसके साथ मत खाओ। सैकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र ने भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं- 1. जाति दोष- जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध है, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह

जाति–दुष्ट खाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उसमें काम–वासना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में सब प्रकार से घृणित है। 2. गन्दे तथा कीड़े–मकोड़ों से दूषित आहार को निमित्तदोष से युक्त कहते हैं। इस दोष से छुटकारा पाने के लिए ऐसे स्थान में भोजन करना होगा, जो खूब साफ–सुथरा हो। 3. आश्रय दोष– दुष्ट व्यक्ति से छुआ हुआ खाद्य पदार्थ भी त्याज्य है। कारण, इस प्रकार का अन्न खाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं। ब्राह्मण की संतान होने पर भी यदि वह व्यक्ति लम्पट एवं कुकर्मी हो, तो उसके हाथ का खाना उचित नहीं।

इस समय इन सब बातों के प्रकृत उद्देश्य पर किसी का ध्यान नहीं है। इस समय तो सिर्फ इसी बात का हठ मौजूद है कि ऊँची से ऊँची जाति का न होने से उसके हाथ का छुआ न खायेंगे, चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक ज्ञानी या पवित्र आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की किस भाँति उपेक्षा होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण किसी हलवाई की दूकान पर जाकर देखने से मिल जाएगा। दिखायी पड़ेगा कि मक्खियाँ सब ओर भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठती हैं, रास्ते की मिट्टी उड़कर मिठाई के ऊपर पड़ती है और हलवाई के कपड़े प्रायः साफ–सुथरे नहीं हैं। क्यों नहीं सब खरीदनेवाले मिलकर कहते कि दूकान में शीशा बिना लगाये हम लोग मिठाई न खरीदेंगे। ऐसा करने से मक्खियाँ खाद्य पदार्थ पर न बैठ सकेंगी एवं अपने साथ हैजा तथा अन्यान्य संक्रामक बीमारियों के कीटाणु न ला सकेंगी। भोजन के नियमों में हमें सुधार करना चाहिए, किंतु हम उन्नति न कर अवनति के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जल में थूकना न चाहिए, किंतु हम नदियों में हर प्रकार का मैला फेंकते हैं। इन सब बातों की विवेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य शौच की विशेष आवश्यकता है। शास्त्रकार भी इस बात को भली भाँति जानते थे। किंतु इस समय इन सब पवित्र–अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य लुप्त हो गया है, इस समय उसका आडम्बर मात्र शेष है। चोरों, लम्पटों, मद्यवालों, अपराधियों को हम लोग अपने जाति–बन्धु स्वीकार कर लेंगे, किंतु यदि एक उच्च जातीय मनुष्य किसी नीच जातीय व्यक्ति के साथ, जो उसी के समान सम्माननीय है, बैठकर खाये, तो वह जाति–च्युत कर दिया जायेगा और फिर वह सदा के लिए पतित मान लिया जायेगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है। अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के संसर्ग से पाप और साधु के संसर्ग से साधुता आती है और असत् संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य शौच है।

आभ्यन्तरिक शुद्धि कहीं अधिक दुस्तर कार्य है। आभ्यन्तरिक शुद्धि के लिए सत्य भाषण, निर्धन, विपन्न और अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा आदि की आवश्यकता है। किंतु क्या हम सर्वदा सत्य बोलते हैं? अकसर होता यह है कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर', 'दीनबन्धु' आदि बड़े–बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनबन्धु कहना स्पष्ट झूठ है

और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों ने लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं– उन्हें भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किसी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों ने मूर्ति–पूजा निषिद्ध की थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतों की मूर्तियाँ बनी थीं, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किंतु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म–पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति–पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता–पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति–पूजा नहीं है, किंतु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति–पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि–पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे–अच्छे पीरों–फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय काबे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म–साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का जप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।

किंतु इस स्थान पर यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पथ से निवृत्त किया गया, तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति–पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की जिस सीढ़ी तक चढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अग्रसर होने में सहायता करने का प्रयत्न करना चाहिए; किंतु उपासना–प्रणाली को लेकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग धन और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े भागवत समझते हैं, किंतु यह वास्तविक भक्ति नहीं है–वे लोग भी सच्चे भागवत नहीं हैं। अगर वे

सुन लो कि अमुक स्थान पर एक साधु आया है और वह ताँबे को सोना बनाता है, तो वे दल के दल वहाँ एकत्र हो जायेंगे, फिर भी वे अपने को भागवत कहने में लज्जित नहीं होते। पुत्र-प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, धनी होने के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, स्वर्ग-लाभ के लिए ईश्वरोपासना को भक्ति नहीं कह सकते, यहाँ तक कि नरक की यंत्रणा से छूटने के लिए की गयी ईश्वरोपासना को भी भक्ति नहीं कह सकते। भय या लोभ से कभी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही सच्चे भागवत हैं, जो कह सकते हैं—'हे जगदीश्वर! मैं धन, जन, परम सुन्दरी स्त्री अथवा पाण्डित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी अहैतुकी भक्ति चाहता हूँ।' जिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह ब्रह्मा से लेकर कीटाणु तक सभी वस्तुओं में विष्णु के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह आत्मा को ज्ञान से हन समझकर यथार्थ भक्त की भाँति ईश्वर की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एवं तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती—वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रों में भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगों में भक्ति की दृढ़ स्थापना के लिए इन सम्बन्धों की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला में राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि संसार में स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती— केवल एक अच्छेद्य बन्धन दोनों को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यों चिन्ता करें? वह हम लोगों का प्रियतम, आराध्य देवता है, अतः भय के भाव को छोड़कर हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सांसारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम में पागल थी। जिन ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढ़ो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किंतु इस अपूर्व प्रेम के तत्त्व को कितने लोग समझते हैं? बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या

इन तत्वों को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्वों को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सांसारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव–जगत में मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओं के रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। किंतु इस प्रकार के मनुष्य संसार में कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की दुहाई देकर लोग अनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया पृथक् है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में लिप्त नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अथवा कोई भी दूसरा धर्मावलम्बी क्यों न हो, सभी पवित्रता के अवतारस्वरूप होते। किंतु मनुष्य अपनी–अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिचालित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किंतु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उन्मत्त हो जाते हैं, ईश्वर का गुणगान करते–करते जिनकी आँखों से प्रेमाश्रु की प्रबल धारा बहने लगती है। इसी प्रकार के लोग सच्चे भक्त हैं।

भक्ति की प्रथम अवस्था में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है, इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकदम छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण सूर्य, चन्द्र एवं अन्यान्य सभी चीजें गतिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वराभिमुख चल रही हैं। हमारे जीवन की सारी घटनाएँ, अच्छी या बुरी, हमें उसी की ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए खून किया। जो कुछ भी हो, अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो, प्रेम ही इस कार्य का मूल है। खराब हो या अच्छा हो, प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। शेर जब भैंस को मारता है, तब वह अपनी या अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत, अनादि, अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोग जाने या न जानें, वे उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। पति की परमानुरागिणी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति में भी वही महान दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है–केवल यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे स्रष्टा, पालनकर्ता आदि समझते हैं, तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है, किंतु जिस समय इन सारी भावनाओं का परित्याग कर उसे प्रेम का अवतारस्वरूप समझते हैं एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हमें परा भक्ति प्राप्त होती है।

सद्गुरु कृपा लीला

जगदीश राय बंसल, दिल्ली

कालचक्र, युगचक्र और जग चक्र तीनों को एक साथ चलाने वाले हमारे आपके और पाणी मात्र के भाग्य विधाता आराध्यदेव श्री सद्गुरु जी महाराज किस समय, किस तरह और किस का भाग्य उदय कर देते हैं। यह समझना उच्च कोटि के साधक के भी बूते से बाहर की बात है। अत: कई बार तो श्री सद्गुरु जी महाराज द्वारा की गई कृपाओं का रहस्य नियति के गर्भ में ही निहित रह जाता है। मगर आराध्यदेव जी महाराज चुन-चुन कर अपने लाड़ले बच्चों पर कृपा करते-करते अनजाने से बने रहते हैं। किसी आदरणीय गुरु भाई ने कहा भी है-

माली चुनता फूल जिस तरह, फूलों भरी कतार से।
निज बच्चों को आप खेंचते, भीड़ भरे संसार से।।

उपरोक्त पंक्तियों को सार्थक करते हुए एक कृपा प्रसंग अपने दिल्ली स्थित आर के. पुरम आश्रम से संबंधित है। बात उन दिनों की है जब हमारे एक आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई जी और आराध्यदेव जी महाराज के लाड़ले कृपा पात्र, जिन्होंने अपना व किसी का नाम न लिखने की इच्छा प्रकट की है, अपने सिद्ध योग आश्रम दिल्ली का कार्य भार सम्भाल रहे थे। ये आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई जी अकारण दयालु गुरु चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपाओं से पूर्णतया ओत प्रोत हैं और अनेक कृपा कवचों को केवल अपनी मुस्कान में ही छिपाए बैठे हैं। मैं तो यही सोचता हूँ कि-

नाम छिपायो ना छुपे जानत सकल जहान।
गुरु महिमा गायन सौं भयो गुरु का मान।।

आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई जी के आश्रम के अधिभार को ध्यान में रखते हुए करूणा सागर गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने एक गुरु भाई श्री सत्यवान (बदला हुआ नाम) को आश्रम की सेवा करने एवं आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई जी के कार्य में हाथ बंटाने के निमित्त दिल्ली आश्रम में रहने की अनुमति प्रदान कर दी।

सन् 1981-82 से दीक्षित गुरु भाई श्री सत्यवान जी गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर सपत्निक श्रीमती सावित्री देवी (परिवर्तित नाम) सहित दिल्ली आर.के. पुरम आश्रम में रहने लगे। पति और पत्नी दोनों में आपसी तालमेल सद्भावनाएँ और प्रगाढ़ प्यार एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर था। अत: दोनों ने अपनी गहरी श्रद्धा निष्ठा और विश्वास के साथ आश्रम की सेवा करके अपना जीवन तो सफल बनाया ही, साथ ही साथ आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई जी

का कार्य भार बहुत हल्का कर दिया और अकारण दयालु गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का आशीर्वाद बार-बार लूटते रहे। पति-पत्नी पर सर्व समर्थ की ये पंक्तियां खरी उतर रही थीं।

गुरु देव की कृपा से सब कार्य हो रहा है।
करते हैं मेरे प्रभु जी मेरा नाम हो रहा है।।

कृपा प्रसंग 1994 का है। आदरणीय गुरु भाई श्री सत्यवान जी को एक चिन्ता सताने लगी। भाई जी की धर्म पत्नी श्रीमती सावित्री देवी जी जननी बनने वाली थीं। पति-पत्नी की शान्ति यह सोच कर भंग रहने लगी कि वह दिन आने पर कहाँ जाएंगे? कैसे क्या होगा? इस भीड़ भरी, महंगाई की महानगरी में एक साधारण आदमी की हैसियत ही क्या है? बच्चा होने में ऑपरेशन की नौबत भी आ सकती है। इत्यादि समस्याएँ सिर चढ़ी हुई थी। अन्ततः वह दिन आ ही गया, जिसके कारण ढेर चिन्ताएँ सताए जा रही थीं। अब आदरणीय गुरु भाई श्री सत्यवान की 'किं कर्तव्य विमूढ़' वाली स्थिति बनी हुई थी। आनन-फानन में या यों कहिए कि-

गुरु देव के प्यारे बच्चों को पग-पग पे सहारा मिलता है।
तुम इधर हटो, तुम उधर बढ़ो, यह आप इशारा मिलता है।।

परिणामतः श्रीमती सावित्री देवी को राम मनोहर लोहिया अस्पताल में ले जाया गया। संयोग ऐसा बना कि अस्पताल के जनरल या अन्य किसी वार्ड में कोई बैड खाली न पा कर, और प्रजनन अवधि निकट जान कर अस्पताल के सुयोग्य कर्मियों ने झट से श्रीमती सावित्री देवी को वी आई पी रूम में दाखिल कर लिया।

दिन के ठीक बारह बजे बाल रुदन हुआ। नर्स ने भाई जी को लड़का होने की बधाई दी। बधाई के साथ यह स्वतः समझ लिया गया कि बच्चा नॉर्मल डिलिवरी से हुआ है। क्योंकि भाग्य विधाता की अहैतुकी कृपा अपना काम जो कर रही है।

जच्चा-बच्चा की मौज मस्ती के मध्य, तीसरे दिन छुट्टी होने का समय आ गया। कुछ राशि तो अस्पताल में दाखिल होने के समय जमा कर दी गई थी। शेष राशि 15000 रु. जमा कराने के लिए-अस्पताल का फरमान जारी हो गया। अतः आदरणीय भाई श्री सत्यवान जी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री देवी के पास अपनी साली श्रीमती निर्मला देवी (नया नाम) जो दिल्ली क्षेत्र में द्वारिका में रहती है को छोड़ कर उक्त राशि लाने हेतु चले गये। कुछ समय पश्चात् भाई जी 15000 रु. के साथ अस्पताल लौट आए और अस्पताल के काउन्टर पर 15000 रु. जमा कराने लगे। मगर यह क्या? आश्चर्य? महान आश्चर्य! काउन्टर बाबू जी ने राशि लेने से यह कह कर इंकार कर दिया कि आपके 15000 रु. जमा हो चुके हैं। आदरणीय भाई सत्यवान के समझाने व समझने पर उक्त बाबू जी ने जमा राशि का रजिस्टर दिखाते हुए कहा कि लो भाई अपने साईन पहचान लो। आदरणीय गुरु भाई ने रजिस्टर में

देखा तो हू ब हू साईन दर्ज मिले।

अब गुरु भाई जन अपने गन्तव्य की राह पर चले। चूंकि, सूतक होने के कारण, आश्रम में तो प्रवेश करना वर्जित है। अत: साली जी के आग्रह को मानते हुए इनके घर द्वारिका (अनुमानित नाम) चलने का निर्णय लिया गया।

लीला धारी की लीला को लीला धारी ही जानते हैं। ज्यों ही जच्चा-बच्चा सहित चारों गुरु भक्त अस्पताल के गेट पर आए, एक टैक्सी वाला युवक मानो इन्हीं के लिए इंतजार कर रहा था, टैक्सी में बैठा कर द्वारिका स्थित श्रीमती निर्मला देवी के घर ले आया। टैक्सी से उतर कर श्रीमती निर्मला देवी ने उक्त ड्राइवर से कहा कि भाई साहब चाय पी कर जाना, मैं चाय बनाती हूँ, मगर ड्राइवर ने चाय पीने से मना कर दिया, बोला बहन जी पानी पिला दीजिए। तत्पश्चात् श्रीमती निर्मला देवी ने किराया पूछा तो युवक ने मुस्करा कर किराया लेने से इंकार कर दिया। बोला आपको भाजा होने की खुशी है तो इनाम के नाम पर कुछ दे दीजिए। श्रीमती निर्मला देवी ने सहर्ष 50 रु. थमा दिये और ड्राइवर साहिब हंसते-हंसते चलता बना।

इस समय आदरणीय गुरु भाई श्री सत्यवान जी अपने भरे पूरे परिवार के साथ, योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्दमोहन जी महाराज की छत्र-छाया में पूरे आनन्द वैभव के साथ जीवन-यापन कर रहे हैं। गुरु ग्रंथ में सच ही लिखा है-

सब पर्वत स्याही करूँ घोल समुन्दर जाये।
धरती का कागज करूँ, सद्गुरु स्तुति न समाय।।

बहारो फूल बरसाओ

बहारो फूल बरसाओ, मेरे गुरु देव ने आना है
घटाओ आज ना बरसो, मुझे गुरु चरणों में जाना है।
लगी थी आश वर्षों से, होंगे आज वो दर्शन
निभाने आज आशा को, पधारे खुद पतितपावन,
मेरे कष्ट हरने को, दया का सागर लाए हैं। बहारो...
करूँ कैसे तेरी पूजा ना मन फूला समाता है
कहाँ जाऊँ मैं क्या लाऊँ समझ कुछ भी न आता है
मुझे अपनी ही लहरों में लहराने आए हैं। बहारो...
क्या खिलाऊँ, कहाँ बिठलाऊँ, मुझे शर्म हो आती है
कोई वस्तु नहीं ऐसी, जो तुझ से बढ़ कर लगती है
मेरी श्रद्धा विश्वास का, भोग लगाने आए हैं। बहारो...
ना चाहिए धन दौलत तेरी भक्ति चाहता हूँ
मेरे सिर पर हाथ हो तेरा यही वरदान चाहता हूँ
मुझ अधम नीच का उद्धार करने आए हैं। बहारो...

जगदीश राय बंसल
गोहाना मंडी

श्री अशोक जी के परिवार पर अहैतुकी कृपा

केशवदेव उपाध्याय

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम से संबंधित एक साधक का नाम श्री अशोक कुमार सिंह है। इनकी धर्मपरायण पत्नी का नाम श्रीमती गिरीश देवी है। यह आध्यात्मिक प्रेम से ओत–प्रोत महिला हैं। इस दम्पत्ति को तीन सन्तानें थी, जिसमें एक का शरीरान्त हो गया। इस समय इनकी दो सन्तानें श्री दीपक कुमार सिंह पुत्र तथा पुत्री का नाम किरन है। श्री दीपक कुमार को एक पुत्र तथा एक पुत्री है। इनके पुत्र का नाम सूरज कुमार है। इस समय सूरज की उम्र मात्र पांच वर्ष है। जब इसकी उम्र मात्र तीन साल की थी, तो अनाथ नाथ श्री सद्गुरुदेव भगवान ने एक भीषण कार दुर्घटना में इस बालक की अलौकिक ढंग से रक्षा कर जीवन दान दिया। इस प्रसंग को कहने–सुनने से यह स्वयंमेव स्पष्ट हो जाता है कि श्री गुरुदेव जी महाराज प्रतिपल हमारे रक्षक है।

श्री अशोक कुमार सिंह जी, भगवान भोले नाथ के त्रिशूल पर बसी हुई काशी नगरी के ही निवासी हैं। पहले इनका निवास स्थान राम नगर की तरफ जाने वाले बाई पास के नजदीक आनन्द नगर कालोनी में था। उन्होंने वह मकान बेचकर वाराणसी शहर के लहरतारा (योगी श्री कबीर प्राकट्य स्थल) के पीछे, आधुनिक सभी सुविधाओं से युक्त मकान बनवाया है, उसका गृह प्रवेश आराध्यदेव के सामूहिक सत्संग एवं भोज के साथ पिछले साल इन्होंने किया था एवं इस समय उसी मकान में पूरे परिवार के साथ सुखमय जीवन यापन कर रहे हैं। इन्होंने आराध्यदेव का मन्दिर (पूजागृह या प्रभु दरबार) छोटा परंतु बहुत ही भव्य बनवाया है, जिसमें आरती पूजा के साथ दैनिक साधना करते हैं। श्री सूरज के जीवन दान की घटना, उस समय की है, जब ये अपने आनन्द नगर कालोनी वाले मकान में पूरे परिवार के साथ निवास कर रहे थे। इनकी (श्री अशोक जी की) तीसरी सन्तान का नाम कुमारी मीनू था तथा जब वह इण्टरमीडिएट की छात्रा थी, तो उसकी तबियत खराब रहने लगी। छोटे–मोटे डाक्टरों से उसका इलाज कराया गया परंतु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बेहतर इलाज के लिये उसे बी एच यू. में भर्ती कर दिया गया। उसके रोग से संबंधित सभी जाँच करायी गयीं तो पता लगा कि उसे ब्लड कैन्सर है।

रोग का पता लगने के बाद इसे बी एच यू. के टॉप वन डाक्टर श्री मधुकर राय जी को दिखाया गया। उन्होंने एक जांच और करायी एवं जांच की रिपोर्ट देखने के बाद कहा, "अशोक जी! इसे किसी भी प्रकार बचाया नहीं जा सकता। यह पूर्ण रूपेण रोग के कब्जे में है एवं चन्द दिनों की मेहमान है। किसी और को दिखाना चाहे तो आप दिखा दें, वैसे मेरी तो

राय यही है कि इसे लेकर अपने घर जाइये, जो कुछ भी खाना-पीना चाहे, खिलाइये-पिलाइये एवं जो दवा लिखी गई है, उसे देते रहिये। यह जितने दिन तक जिन्दा रहेगी कोई विशेष कष्ट नहीं रहेगा।"

डाक्टर श्री मधुकर राय जी की बात सुनकर श्री अशोक जी ने काफी परेशानी का अनुभव किया, परंतु लाचारी थी, बच्ची को लेकर अपने घर आ गये एवं डाक्टर के परामर्श के अनुसार उसका इलाज चलता रहा। श्री अशोक जी के सभी हितैषियों एवं शुभेच्छु लोगों को यह बात ज्ञात हो गई, अतः प्रत्येक दिन दो-चार लोग उसे देखने आने-जाने लगे। कुमारी मीनू ने सन् दो हजार पाँच में इण्टरमीडिएट की फाइनल परीक्षा दी थी, जो मार्च के अन्तिम सप्ताह में समाप्त हो गई थी। फाइनल परीक्षा के समय ही इसकी तबियत खराब होना आरम्भ हो गई एवं परीक्षा समाप्त होते-होते इसकी तबियत इतनी खराब हो गई कि इसे बी एच यू. (वाराणसी हिन्दू यूनिवर्सिटी) के मेडिकल कालेज में भर्ती कराया गया था, जहाँ से श्री अशोक जी घर ले गये थे।

तेरह अप्रैल दो हजार पाँच का दिन था। पूर्वाह्न का समय था। श्री अशोक जी के कुछ रिश्तेदार एवं परिचित बीमार मीनू को देखने, उनके आनन्द नगर कॉलोनी वाले मकान पर आये थे। श्री अशोक जी का पूरा परिवार आगन्तुक लोगों से वार्तालाप में व्यस्त था। श्री सूरज कुमार जिसकी अवस्था लगभग तीन साल थी एवं जो बड़ा नट-खट था, खेलते हुये मकान के सामने मुख्य सड़क पर चला गया। वह सड़क की चौड़ाई पार कर रहा था, इसी समय बड़ी तेज गति से चलती हुई एक अम्बेसडर कार आई एवं यह सूरज उस कार के नीचे आ गया। वह सड़क पार कर रहा था, परिवार के लोग सूरज-सूरज कह कर रोक रहे थे एवं वह तेजी से सड़क पार करने का प्रयत्न कर रहा था कि यह भीषण दुर्घटना हो गई।

कार को उपस्थित लोगों ने रोको-रोको, पकड़ो-पकड़ो की आवाज के साथ पकड़ने के लिये दौड़ा लिया एवं उसके ड्राइवर ने स्वयं को पकड़ में आने से बचने के लिये कार को पूरी स्पीड से भगाना चाहा। दुर्घटना वाले स्थान से मात्र सौ फीट आगे सड़क के किनारे दाहिनी तरफ टेलीफोन का खम्भा गड़ा था जहाँ से सड़क नब्बे अंश पर बायीं तरफ घुमी हुई थी। चालक ने स्पीड तो बढ़ा दी परंतु अम्बेस्डर कार को उसी क्रमिक गति से बायीं तरफ जाने वाली सड़क पर मोड़ नहीं सका। परिणाम स्वरूप कार ने टेलीफोन के खम्भे में जोरदार टक्कर मारी एवं टेलीफोन का खम्भा टेढ़ा हो जाने के कारण वह आगे नहीं बढ़ सकी। तब तक परिवार के लोग एवं इनके यहाँ आये आगन्तुक भी वहाँ पहुँच गये एवं ड्राइवर को, जो अभी सीट पर कार में ही बैठा था, पीटना आरम्भ कर दिया। सब लोग ड्राइवर को पीट रहे थे, परंतु हमारे गुरुभाई श्री महेन्दर जी, जो श्री अशोक जी के भाई हैं सूरज को ढूँढ रहे थे। उन्होंने आस-पास सब तरफ देखा, परंतु उन्हें सूरज दिखाई नहीं दिया। उन्होंने जब अम्बेस्डर कार के नीचे देखा, तो सूरज अचेता अवस्था में चित्त (मुख एवं छाती ऊपर की

तरफ किया हुआ) लेटा हुआ दिखलाई पड़ा। उन्होंने श्री अशोक जी को लक्ष्य बनाकर, जोर से आवाज लगाई, "भैया! सूरज कार के नीचे पड़ा है।"

तब सबका ध्यान सूरज की तरफ गया। सूरज को कार के नीचे से सावधानी से निकाला गया, जो बिल्कुल चेतना शून्य जैसा ही था। श्री अशोकजी ने गोद में लेकर उसे झकझोरते हुये, चार बार सूरज , ऐ सूरज, सूरज, ऐ सूरज की आवाज लगाई, परंतु सूरज कोई हरकत नहीं कर रहा था। जब उन्होंने उसे फिर झकझोरते हुये, अरे सूरज की आवाज लगाई, तो जैसे सोया हुआ आदमी जगते समय करता है, उसी लहजे में सूरज ने कहा, "हाँ बाबा।" तब जाकर श्री अशोक जी एवं उपस्थित समुदाय के व्याकुल एवं निराश लोगों को शांति मिली।

सूरज, श्री अशोक कुमार सिंह के सुपुत्र श्री दीपक कुमार का पुत्र है एवं आज भी बड़ा ही चंचल एवं कुशाग्र बुद्धि का है। बावजूद इसके, वह अपने बाबा श्री अशोक जी एवं दादी श्रीमती गिरीश देवी के साथ ही सदैव दिखलाई पड़ता है। पता नहीं श्री प्रभु जी की क्या माया है। पूर्व जन्म का संस्कार है या बाबा–दादी का असीमित प्यार है।

इस घटना, जो दुर्घटना थी, का वास्तविक कारण जानने का प्रयास किया गया तो पता चला कि अम्बेस्डर कार किसी प्रयोजन वश कहीं की यात्रा पर नहीं थी, बल्कि उसी आनन्द नगर कालोनी का एक बीस बाईस साल का लड़का, अपने बाप की गैर मौजूदगी में, अपने पिता की कार को, कार चलाना सीखने की नीयत से कालोनी की चौड़ी सड़क पर धीरे–धीरे चला रहा था। उसी समय बालक सूरज सड़क के चौड़ाई के मध्य आ गया। बालक को बचाने की नीयत से उसने घबराहट में ब्रेक लगाया। वह संयोग था या गाड़ी सीखने की गलती थी कि उसका पैर ने ब्रेक न दबाकर, एक्सीलेटर दबा दिया। परिणाम स्वरूप गाड़ी रुकने के बजाय पूरी गति से दौड़ गई।

कार एक्सीडेन्ट की खबर जीवन–मृत्यु से संघर्ष कर रही कुमारी मीनू को भी ज्ञात हो गई एवं वह रोने लगी। जब उसे बतलाया गया कि सूरज बिल्कुल स्वस्थ एवं ठीक है तो उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने सूरज को बुलाया, उससे बात की एवं तब उसे संतोष हुआ कि सूरज बिल्कुल ठीक है। कुछ समय तक वह परेशान रही परंतु अब वह शांत भाव में आ गई। करीब दो घंटे उसके श्वास की गति खराब थी। श्री अशोक जी के भ्राता जो हमारे गुरुभाई भी है, यह क्रिया देख रहे थे। उन्होंने कमरे से बाहर श्री अशोक जी को बुलाया एवं कहा, "भैया! मुझे लगता है कि मीनू का अन्तिम समय चल रहा है। उसने गले में श्री प्रभु जी का स्वरूप पहना हुआ है, शायद इसीलिये उसका प्राण नहीं निकल रहा है। आप किसी बहाने से स्वरूप निकलवा लें एवं मैं उसे आरती गृह में स्थित श्री प्रभु जी के स्वरूप का दूर से दर्शन कराता हूँ। शायद इसका कल्याण हो जाये।"

श्री अशोक जी ने कोई बहाना बनाकर स्वरूप गले से निकाल लिया। इसके बाद

पवित्र शरीर होकर श्री महेन्चर जी ने पूजा गृह से अखिल ब्रह्माड नायक, परम योग–योगेश्वर दादा गुरुदेव श्री महाप्रभु जी का स्वरूप अपने दोनों हाथों में लेकर, मीनू से कहा, "बेटी! देखो! ये कौन है?" उसने चारपायी पर लेटे–लेटे प्रार्थना की मुद्रा में हाथ जोड़कर कहा, "दादा गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै।" एवं इस त्रिजग पावन जयकारे के साथ ही प्यारी बच्ची कुमारी मीनू का शरीरान्त हो गया।

मीनू का शरीरान्त होने के बाद परिवार के सभी सदस्य व्यथित मन से करुण विलाप कर रहे थे। अल्प वयस्क सूरज को क्या पता कि सभी लोग क्यों रो रहे हैं। वह बार–बार श्री अशोक जी को परेशान कर रहा था। वह बार–बार यही कह रहा था, "एक बात बतलाऊं बाबा।" हर बार श्री अशोक जी उससे यही कहते, "अभी चुप रहो।" उसकी परेशानी से ऊब कर श्री अशोक जी ने कहा, "जल्दी कहो, क्या बतलाना है।"

उसने बतलाना आरम्भ किया, "बाबा–बाबा जब मैं सड़क पर दौड़ रहा था, एक गाड़ी आ गई। मैं उसके नीचे दब गया। जिस बाबा का फोटो बुआ को दिखाया गया, वही बाबा आ गया। हमको अपनी गोद में ले लिया। बहुत देर तक बात किया। वह बाबा, आप से भी देर तक गोद में लेकर बात करता रहा। अभी तो हम उसी बाबा से बात कर रहे थे, आप ने हमें सूरज, अरे सूरज कहके बुला लिया।"

सूरज अपने सांसारिक बाबा श्री अशोक जी से इस प्रकार बात कर रहा था एवं वह टकटकी निगाह से उसका कोमल शरीर निहार रहे थे। उनका मन बिलकुल शांत था एवं अगाध करुणासागर की अहैतुकी कृपा का स्मरण कर रोमांचित हो रहा था एवं उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा निकल रही थी।

आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज, जब हम गुरुभाई–बहनों को पत्र देते थे, तो आदेशित करते थे कि तुम अपने गुरुमंत्र का चलते–फिरते, उठते–बैठते जप किया करो, वे कैलाश निवासी श्री प्रभु जी सदैव तुम्हारी रक्षा करते हैं। सहसा असहज लगता था। अब देखने को मिल रहा है। अब तो यही समझ में आ रहा है–

अब किसे देखना है, तुम्हें देखने के बाद।
और किसे पूजना है, तुम्हें पूजने के बाद।।

योग साधन आश्रम ऋषिकेश का योग महामेला सम्पन्न

योग योगेश्वर आनन्द कंद महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज व योगगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणा कृपा से देवभूमि ऋषिकेश हिमालय की तलहटी गंगा के ऋषिकेश आश्रम का योग महामेला प्रत्येक वर्ष की भांति गंगा दशहरा पर्व पर बड़ी ही धूमधाम से मनाया गया।

तीन दिवसीय योग सम्मेलन दिनांक 11 जून से 13 जून तक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 4 बजे से रात्रि 10 बजे तक चला। जिसमें सद्गुरु देव के कृपा पात्र ब्रह्मचारियों ने ध्यान योग, जीवन तत्व क्रियायें, योगासन, दिव्य आरती, गीता एवं अन्य शास्त्रीय सिद्धान्तों पर प्रवचन दिये।

प्रथम दिन प्रातः 4 बजे दिव्य आरती आश्रम के आचार्य श्री पूर्णचन्द्र शर्मा एवं ब्रह्मचारियों द्वारा की गयी। उसके पश्चात् शहर के मुख्य मार्गों से प्रभात फेरी निकाली गयी। प्रभात फेरी में सिद्धगुफा सांवाई के आचार्य डा. दासलाल ब्रह्मचारी, पूर्ण चन्द्र शर्मा बहिन डा. उमा शर्मा, डा. वीरेन्द्र ब्रह्मचारी, डा. विजय सिंह एवं अनेक गुरु देव के बच्चों ने हिस्सा लिया। ब्रह्मचारियों के आदरणीय उद्घोष योग को अपनाओगे सच्चा जीवन पाओगे, उठो सोने वालो जगाने वाले आ गये योग का डंका बजाने वाले आ गये, से सारा वातावरण एवं गलियाँ गूंज उठी। झाँसी मण्डल ने साज-बाज के साथ यहाँ सुधा बरसा आ गये हमारे गुरुजी भजन सुनाया जिसे सभी गुरु भक्तों ने दोहराया।

गुरुदेव के कृपा पात्र प्रवचन कर्ता योग निष्ठ शिष्यों में ब्रह्मचारी डा. दासलाल जी सिद्धयोग आश्रम सवाई, बहिन डा. उमा शर्मा, पूर्ण चन्द्रपन्त, डा. विजय सिंह, वीरेन्द्र ब्रह्मचारी योग शिक्षक देहरादून, भूतपूर्व प्राचार्य चन्द्र किशोरी द्विवेदी जी, मनमोहन त्रिखा जी आदि ने योग की सरलतम एवं सहज व्याख्या कर अन्य शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं महाप्रभु जी के साथ घटित घटनाओं का उदाहरण देकर समझाने का प्रयास किया एवं व्याख्यान दिये जिसको सैकड़ों गुरु भाईयों को सुनने का सुअवसर मिला एवं उन्हें आचरण में उतारने का संकल्प किया।

डा. दास लाल ब्रह्मचारी ने 'अथ योगानु शासनम्' का रहस्य बताते हुए स्पष्ट कर दिया कि योग की साधना करने वाले साधकों के लिए अनुशासन परम आवश्यक है। गुरुदेव के अनेकानेक कृपा चरित्रों का उदाहरण देकर श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं को सद्गुरु देव की आध्यात्मिक शक्तिओं से परिचित कराया एवं आचार्य जी के सान्निध्य में जीवन तत्व साधना, योगासन गुरुभक्तों को भाव विभोर कर दिया तथा गीता तथा अन्य शास्त्रीय श्लोकों द्वारा सरल

ढंग से गुरुभक्तों को जीवन में सिद्धयोग को आचरण में उतारने पर बल दिया। आचार्य पूर्ण चन्द्र पन्त द्वारा अष्टांग योग की सरल एवं सहज व्याख्या की गई जिसे सैकड़ों गुरुभक्तों को सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने विशेष रूप से अहंकार, राग, द्वेष पर व्याख्यान दिये गीता एवं अन्य शास्त्रीय श्लोकों को बहुत ही सरलतम ढंग से गुरु भक्तों को समझाया। राग, द्वेष, अहम त्यागने का सरल उपाय यह है कि सभी में गुरुदेव भगवान को देखो, आपके अन्दर से धीरे–धीरे राग द्वेष समाप्त हो जावेगा। दिल्ली के ही मन मोहन कृष्ण त्रिखा (रामलाल आनन्द मे रीडर) ने भौतिक विज्ञान एवं आध्यात्मिक विज्ञान के साथ्य समन्वय पर प्रकाश डाला। मैत्रयी कालेज दिल्ली से डा. राजकुमारी त्रिखा ने यम, नियम आदि विषयों पर प्रकाश डाला।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हि. प्र., राजस्थान, बिहार, हरियाणा, दिल्ली, पंजाब, उत्तरांचल, जम्मू आदि राज्यों से आये सैकड़ों गुरु भक्तों ने तीन दिवसीय योग सम्मेलन का पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। आश्रम के ब्रह्मचारियों द्वारा उत्तम व्यवस्था की गयी थी। देश के कोने–कोने से आये मण्डलों ने प्रभु जी के चरणों में इतने हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक योग भजनों की प्रस्तुती दी कि सारा वातावरण प्रभुमय हो गया। बहिन डा. उमा शर्मा के साथ आये बच्चों ने बहुत ही सुन्दर भजन सुनाये। कार्यक्रम का समापन भारी संख्या में साधकों एवं आश्रम के ब्रह्मचारियों द्वारा अराध्यदेव एवं दादा गुरुदेव की सामूहिक दिव्य आरती सस्वर, लयबद्धता के साथ गुरुदेव भगवान का पूजन एवं विशाल भण्डारे के साथ सम्पन्न हुआ।

प्रेषक

अनिल दुबे, दतिया

●●●

लघुकथा

सजा

सुनील कुमार 'सजल'

वह करीब माह भर से भगवान के दरबार पर जाता रहा और एक ही रोना रोया– 'भगवान मेरे ऊपर यह कैसा अन्याय उड़ेल रहे हो... तुम्हीं देखो पहले पत्नी मानसिक विक्षिप्त हुई फिर आग लगाकर आत्महत्या कर ली... साल–दो साल के दो छोटे बच्चे मां के बगैर होकर रह गए... अब करूं भी तो क्या करूं... मेरा संकट तो हरो भगवान...।'

एक दिन भगवान प्रकट हुए और बोले– 'वत्स! तूने अपने पैर पर खुद ही कुल्हाड़ी मारी है।'

'यह क्या कह रहे हैं भगवन...।'

'जो कह रहा हूँ ठीक कह रहा हूँ... अगर तू पिछला जीवन निकम्मेपन व कामचोरी से न जीता तो तेरी पत्नी तेरे संग नमक–रोटी खाकर भी खुश रहती। वह तेरी बढ़ती कारगुजारी को नहीं देख सकी और मानसिक विक्षिप्ता का शिकार हुई... मगर तू न सुधरा। तेरी अति उसे सहन न हुई तो उसे भूख–प्यास से बिलखते बच्चों को देखना मुमकिन न रहा और फिर... तुझे मालूम है, इसलिए तुझे ऐसी सजा मिलनी चाहिए कि प्रायश्चित कर सके...।' इतना कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। वह देखता रह गया।

व्यक्तित्व के विकास में गायत्री साधना का उपयोग

पं. लीलापत शर्मा

गायत्री उपासना का दर्शन और विधान व्यक्तित्व के समग्र निखार की आवश्यकता पूरी करता है। इस प्रक्रिया में ज्ञान और कर्म दोनों का समन्वय है। इस उपक्रम को अपनाने वाला उपासना की अवधि में अपने चिंतन को उच्च स्तर का बनाता है और शरीर को ऐसी क्रिया कृत्यों में लगाता है, जिनसे आदर्शवादिता की ओर अग्रसर होने की भाव भरी प्रेरणा मिलती है।

न तो मात्र चिंतन ही पूर्ण है न अकेला कर्म ही। दोनों का पृथक-पृथक अस्तित्व तो है और उनसे प्रतिफल भी प्राप्त होता है, पर वह रहता सर्वथा अपूर्ण एवं एकांगी ही है। बिजली के दोनों तार मिलकर ही प्रवाह पैदा करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म का समन्वय ही सत्परिणाम उत्पन्न करता है। गायत्री उपासना में उत्कृष्ट जीवन के लिए अभीष्ट ज्ञान और कर्म का इस प्रकार समन्वय है कि उसे व्यक्तित्व के विकास का ऐसा समग्र शिक्षण कह सकते हैं, जिसमें चिंतन और कर्मकांड का उपयुक्त संतुलन बहुत ही दूरदर्शिता के साथ मिलाकर रखा गया है।

उपासना काल में साधक का चिंतन सर्वथा अंतर्मुखी रहता है। बाहरी संसार का विचार और कर्म करते-करते ही पूरा समय बीतता है। पूजा का थोड़ा सा समय इसके लिए सुरक्षित रखा गया है, ताकि उस अवधि में मात्र अंतर्मुखी चिंतन किया जाए और अंतर्जगत से संबंधित तथ्यों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाए। जब तक इसी प्रयोजन में मन लगा रहता है, तब तक साधना में मन लगा समझा जाता है। संतोष मिलता है और सत्परिणाम भी मिलता है, किंतु यदि मन थोड़े से समय में भी नैतिक जीवन का, बाहरी संसार का ही चिंतन करने के लिए दौड़ता रहे तो समझना चाहिए, साधना अधूरी रह गई। मनोनिग्रह की आवश्यकता इसीलिए समझी जाती है कि उस अवधि में जो कुछ सोचा और किया जाए, वह आत्मिक क्षेत्र से ही संबंधित हो। जितनी देर ऐसा बन पड़ता है समझा जाता है कि उपासना का उपक्रम ठीक तरह बन पड़ा।

उपासना की पूर्वार्द्ध (1) स्वाध्याय (2) सत्संग (3) चिंतन (4) मनन है। इनमें आत्म-समीक्षा, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के संदर्भ में विभिन्न समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान समझने का प्रयत्न किया जाता है। इसी साधना का तत्वज्ञान एवं दर्शन पक्ष कहा जा सकता है। ब्रह्म-विद्या का सारा कलेवर इस प्रशिक्षण की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही खड़ा किया गया है। कथा-प्रवचनों का यही उद्देश्य है।

उपासना का उत्तरार्द्ध यह है कि जिसे कर्मकाण्ड उपचार के साथ संपन्न किया जाता है। इसके भी चार चरण हैं- (1) पवित्रीकरण (2) देवपूजन (3) जप (4) ध्यान। प्रायः इन चार वर्गों में ही साधना का विधि विधान आ जाता है। रुचि भिन्नता और परिस्थिति विशेष के कारण विभिन्न प्रकार के साधना विधान बनते रहे हैं, पर उन सबको यदि वर्गीकृत करना हो तो चार में उन

सबका समावेश हो सकता है।

पवित्रीकरण में पवित्र नदी सरोवरों का स्नान, शरीर शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, उपचार शुद्धि आदि सम्मिलित है। पूजा उपचार आरम्भ करने से पहले आत्म शोधन के लिए आचमन, प्राणायाम, न्यास आदि की क्रियाएं सम्पन्न करनी पड़ती है।

देव पूजन में प्रतिमा पूजन, षोडशोपचार, स्तवन, अभिषेक, आरती, परिक्रमा, मंदिर दर्शन, सूर्यार्घ्यदान, कलश स्थापना, दीप स्थापना, हवन आदि कृत्यों को गिना जा सकता है।

जप में मन्त्रों के रूप में जाने वाले शब्द गुच्छकों की रटन, पुनरावृत्ति, कीर्तन, मानसिक जप, अखण्ड परायण, ग्रंथ पाठ आदि की गणना आदि होती है।

ध्यान में बिंदु योग, लययोग, नादयोग, चक्रवेधन, पंचकोश साधना, प्राणयोग आदि वे सभी साधनाएं आ जाती है, जिनमें चिंतन को एक विशिष्ट दिशा धारा प्रवाह करना पड़ता है।

इस प्रकार समग्रयोग के आठ अंग है। भगवती साधना में दुर्गा की आठ भुजाओं के रूप में शास्त्रकारों ने इन्हीं का निरूपण किया है।

देखना यह है कि इन आठों क्रिया–कृत्यों से किस प्रकार व्यक्तित्व का निखार और उभार संभव होता है। मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए इन विधि विधानों का किस प्रकार, किस मर्मस्थल पर क्या प्रभाव पड़ता है? सामान्य दृष्टि से यह सभी उपचार जादुई लगते है और प्रतीत होता है कि इनमें कोई रहस्यमय प्रक्रिया भरी होगी, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। साधना विधियों को प्रतीक पूजा कहा गया है। इनके क्रिया कृत्यों में चिंतन और कर्तव्य को उत्कृष्टता की दिशा में मोड़ने की भाव भरी प्रेरणाओं का समावेश है। इन प्रेरणाओं को जितना व्यावहारिक जीवन में उतारा जाता है, उसी अनुपात से अंतर की दिव्य शक्तियां उभरती है और उस उभार के अनुरूप सिद्धियों और विभूतियों के चमत्कारी प्रतिफल सामने आते हैं।

पवित्रीकरण के अंतर्गत जल सिंचन, तीन आचमन, न्यास, अघमर्षण प्राणायाम आते है, इनमें जल, वायु एवं अंग स्पर्श के माध्यम से अंतरंग और बहिरंग की पवित्रता धारण करने के निर्देश हैं। शारीरिक कषाय और मानसिक कल्मष ही आत्मिक प्रगति के प्रमुख अवरोध है। उन्हें हटाने, समग्र स्वच्छता अपनाने से अंतरात्मा में भगवान की अनुकंपा एवं दिव्य समर्थता का अवतरण संभव होता है। यह तथ्य समझाने और अपनाने के लिए पवित्रीकरण के पांचों उपचार है।

दूसरा उपचार देव पूजन है। इसका तात्पर्य है देवत्व की गरिमा को स्वीकार करना और उसके सम्मुख नतमस्तक होना, पक्षधर बनना। आमतौर से सामान्य जीवन दैत्य उपासक ही रहता है। दैत्य अर्थात् वैभव, सुविधा साधन, लिप्सा–लालसा का तुष्टीकरण। इन्हीं कुचक्र में सारा श्रम और मनोयोग खप जाता है। देवत्व की कल्पना भर भले ही होती रहे, पर उसके परिपोषण के लिए कुछ बच ही नहीं पाता। इस पशु प्रवृत्ति का उलटने का संकल्प ही देव पूजन है। देवता की प्रतिमा के पीछे आदर्श ही आदर्श भरे पड़े हैं। प्रतिमाएं एक प्रकार की पुस्तकें है जिनकी आकृतियों और प्रकृतियों के समुच्चय में सही बताया गया है कि देवानुयायी का चरित्र

और चिंतन कैसा होना चाहिए।

देव पूजन में जो उपचार वस्तुएं काम आती हैं वे भी सद्गुणों का ही प्रतिनिधित्व करती हैं और उन्हें अपनाने वाले पर देव कृपा बरसने का तथ्य प्रकट करती हैं। जल अर्थात् पवित्रता–तरलता। पुष्प अर्थात् कोमलता–सुषमा। चंदन अर्थात् उदारता–श्रद्धा। दीप अर्थात् परमार्थ परायणता, प्रकाश। नैवेद्य अर्थात् मधुरता–अंशदान, निष्ठा। अर्घ्यदान–श्रेष्ठता के प्रति समर्पण विसर्जन। देवता के सम्मुख इन उपचारों की पूजा उपकरण के रूप में प्रस्तुत करने का तात्पर्य यह है कि देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाने की अनिवार्य शर्त है, जिसे करने के लिए सतत् प्रयत्न किए ही जाने चाहिए।

जप का तात्पर्य है–अनवरत और अथक प्रयास एवं अभ्यास की निरंतर पुनरावृत्ति। आमतौर से एक काम पर से मनुष्य का मन जल्दी ऊब जाता है और नवीनता की तलाश होने लगती है। चंचलता की यह वानर वृत्ति महान कार्यों के लिए आवश्यक अध्यवसाय बनने ही नहीं देती। उच्चस्तरीय कार्यों में बाल क्रीड़ा जैसा कौतुक भी नहीं होता, वे साधारण मन स्थिति को नीरस ही लगते हैं। इसलिए क्षमता सपन्न व्यक्ति भी कोई महत्वपूर्ण कार्य, निरंतर अध्यवसाय न अपना सकने के कारण कर नहीं पाते। आरंभ भी करें तो मन की ऊब वैसा करने नहीं देती। इस मोर्चे को वही जीत सकता है, जिसने मन जीता हो। कहते हैं कि जो अपने को जीतता है, वही दूसरों को, संसार को जीत पाता है। यहां मनोजय की ही चर्चा है। इसका अभ्यास जप के माध्यम से भली प्रकार हो सकता है। एक ही रटना को धैर्यपूर्वक देर तक करते रहने से नवीनता की तलाश के लिए उचक–मचक वाली वानर वृत्ति पर अंकुश लगता है और वह प्रवृत्ति जगती है, जिसके अनुरूप नीरस दिखने वाले महान कार्यों पर धैर्यपूर्वक चित्तवृत्तियों को जमाए रहा जा सके। यह चित्त वृत्तियों का निरोध ही महर्षि पातंजलि के अनुसार योग है। उससे शरीर और मन दोनों को धैर्यपूर्वक अनवरत क्रम से एक ही कार्य को करते रहने का स्वभाव बनता है। महत्वपूर्ण कार्य कर सकने के लिए यह अभ्यास नितांत आवश्यक है।

जप के उपरांत दूसरा चरण है–ध्यान। शारीरिक गतिविधियों को जप के द्वारा अध्यवसाय रत रहने के लिए प्रशिक्षित और अभ्यस्त किया जाता है। इसका अगला चरण है–मन मस्तिष्क के चिंतन का एक केन्द्र पर नियोजित किए रहना, एक दिशाधारा में संलग्न रहना, यही है ध्यान धारणा का उद्देश्य। मन में कितनी प्रचण्ड शक्ति भरी पड़ी है, किंतु वह बिखराव से ही अस्त–व्यस्त और नष्ट–भ्रष्ट होती रहती है। यदि एकाग्रता पा सके तो सामान्य स्तर का मनुष्य भी विद्याध्ययन, अनुभव संपादन, शोध कार्य, विशिष्ट कला कौशलों का उपार्जन जैसी चमत्कारी सफलताएं प्राप्त कर सकता है। एकाग्रता साधने वाले व्यक्ति ही वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, योगनिष्णात होते देखे गए हैं। सांसारिक प्रयोजनों में भी महत्वपूर्ण कार्य सपन्न करने में एकाग्रता के अभ्यास की ही प्रधान भूमिका रहती है।

अंतर्जगत की विभूतियां बाह्य जगत की संपदाओं से भी अधिक मूल्यवान हैं। समष्टिगत भौतिक संपदाएं जल, थल और आकाश में से निकालनी होती हैं, किंतु व्यक्ति को

विभूतिवान बना सकने के लिए जिन दिव्य उपलब्धियों की आवश्यकता होती है, उन्हें अपने भीतर ही खोजा जा सकता है। दृष्टिकोण, मान्यताएं, आस्थाएं, इच्छाएं, आदतें, उमंगें, संवेदनाएं आदि की भाव संपदाएं ही मिलकर व्यक्तित्व को ढालती हैं और उसी आंतरिक वैभव के आधार पर मनुष्य का बाह्य जीवन ढलता है। पिछड़ेपन और प्रगतिशील का उद्गम केंद्र अंत क्षेत्र से ही प्रकट और प्रवाहित होता है। गड़े खजाने की तरह मनुष्य जीवन की वास्तविक और बहुमूल्य संपदाएं उसके अंत क्षेत्र में ही भरी पड़ी हैं। इन्हें जानना, खोजना, उभारना, विकसित और परिष्कृत करने का विज्ञान ही ध्यान योग है। ध्यान को अंतर्जगत के अंधेरे में फेंकी जाने वाली सर्चलाइट कहा गया है। उस आधार पर उस दिव्य क्षेत्र की स्थिति को जानना और बिखेरी पड़ी दिव्य संपदाओं को बटोर लाना संभव होता है।

आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास का समुच्चय ही आत्मिक प्रगति है। उसी मार्ग पर चलते हुए अपूर्णता की पूर्णता में परिणति और लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता संभव होती है। उस प्रसंग के सारे क्रियाकलाप अंतर्जगत में ही करने होते हैं और उनके लिए मानसिक एकाग्रता का प्रखर उपयोग ही कारगर सिद्ध होता है। ध्यान के द्वारा यही चेतनात्मक प्रखरता प्राप्त होती है और इसके द्वारा अंतर्जगत में उपयोगी परिवर्तन परिष्कार कर सकना संभव होता है।

गायत्री उपासना का अर्थ आत्मशोधन, देव-पूजन, जप और ध्यान है। इन चारों का उपयोग आत्म निर्माण के लिए क्रिया योग के रूप में किया जाता है। उसे पूर्वार्ध का, स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिंतन का पूरक ही माना जाना चाहिए। व्यक्तित्व के समग्र विकास की ही भौतिक और आत्मिक संपदाओं का, ऋद्धि-सिद्धियों का केंद्र माना गया है। उस प्रयोजन की पूर्ति में गायत्री उपासना का तत्वज्ञान और विधि-विधान असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होता है।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामपि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्रास्थितं राजते।
स्वात्थां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते।
प्रायेणा धमध्म मोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम्।

-भर्तृहरि नीति शतक

गरम लोहे पर जिस जल की बूंद पड़ने पर उसका नामोनिशान नहीं रहता, वही जल की बूंद कमल के पत्ते पर पड़ने से मोती जैसी हो जाती है और वही जल की बूंद स्वस्ति नक्षत्र में समुद्र की सीप में गिरती है तब सचमुच मोती हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि संसार में अधम, मध्यम और उत्तम गुण संगति के प्रभाव से ही होते हैं।

चेतना का विकास ही मानवीय समस्याओं का समाधान

• डा. सुमन कोचर

मानव की नियति आज एक असमंजसपूर्ण व विचित्र दोराहे पर आकर खड़ी हो गई है। विज्ञान ने मानव के हाथों में चमत्कारिक व अपार शक्तियों का भंडार रख दिया है। विज्ञान की सहायता से वह असीम आकाश में सरलता से विचरण कर सकता है, महासमुद्रों के विस्तार को मापने की तथा विद्युत की असंख्य धाराओं को मोड़ने की क्षमता रखता है। एक अणु से विश्व के निर्माण व संहार करने का दावा भी कर रहा है। क्या अणु शक्ति से जड़-तत्वों को बाँधकर उसका हृदय छलनी करने में जुटा मानव इस अपार भौतिक शक्ति से अपने क्षुद्र अहंकार का पोषण मात्र नहीं कर रहा है? क्या वह अपने चरण काल के क्षेत्र में नहीं बढ़ा रहा? वास्तव में भौतिक शक्ति का यह भंडार मानव के अंदर छुपे दानव के हाथों में है। इसीलिए भौतिक विज्ञान जगत के वैभव का स्वामी अपने आंतरिक जीवन में अभी भी असहाय, निहत्था और बौना ही बना हुआ है। मुस्कुराना चाहकर भी वह मुस्करा नहीं सकता है। उसका व्यवहार, वैचारिक दृष्टिकोण, चिंतन, मनन का स्तर अत्यंत निम्न कोटि का हो गया है। वह मानव अवश्य बन गया है किंतु उसका आचरण व कृत्य पाशविक है।

मानव की इन पीड़ाओं का अंतिम हल आधुनिक विज्ञानमय भौतिकवाद के पास नहीं है। यह शूल प्रतिक्षण, प्रतिपल उसके हृदय को बींध रहा है जिसे निकालना संभव नहीं, मात्र सहलाया अवश्य जा सकता है। इस शूल की पीड़ा को वह किसी रसायन के नशे में भूलकर झुठला सकता है, किंतु उस पीड़ा को समूल नष्ट न तो कर सकता है और न ही कभी कर पाएगा।

मानव की इसी दुरूह धर्म-संकट की इस वर्तमान स्थिति में मानवता का मसीहा एक नया पैगाम, एक नया सत्य, शाश्वत जीवन को जीने का नव व दिव्य संदेश लेकर विश्व जीवन के रंगमंच पर आविर्भूत हुआ। जहाँ देश व मानव पृथ्वी के आर्तनाद, गहन-गंभीर कालिमा से भयभीत हो रहे हैं वहीं वे अपने अंदर सुप्त भागवत शक्ति से चेतना के उस महासूर्य के महाप्रकाश को प्रकट कर कहते हैं, 'धरती पर दिव्य, दिव्यतर बल्कि दिव्यतम जीवन संभव है।' उनकी चेतना में प्रगट यह नव संदेश कोलाहल से दूर पृथ्वी पर एक मधुरतम संगीत की रचना कर रहा है, एक नव, दिव्य, भव्य उषा का आह्वान कर रहा है।

रक्त से नहा रही धरती की पवित्रता को कायम रखने के लिए तप कर रहा है। समूची पृथ्वी से अंधकार को तिरोहित कर उस भागवत चिर दिवस की अभ्यर्थना में लीन वह शाश्वत सत्य का अधिष्ठाता, दिव्य दृष्टा, महर्षि, तपस्वी युग पुरुष, नवचेतना के पुरोधा हैं- 'श्रीअरविन्द'। जिन्होंने काल के गाल को भेदकर उसके पीछे छिपे हिरण्यगर्भ स्वर्णिम पुरुष के साथ में अजरत्व व अमरत्व को स्वर्ण कलश देखकर उससे पृथ्वी के लिए अलौकिक, अमूल्य व

सर्वोच्च वरदान माँगा है– जो केवल पृथ्वी माता परात्पर तत्व से माग सकती है। वह है एक ऐसा रूपांतर जिसे साधित करना और जिसकी शर्तें पूरी करना अत्यंत कठिन है। परम सत्य और शक्ति का जड़तत्व में अवतरण, भौतिक स्तर और चेतना तथा भौतिक जगत में अतिमानस की स्थापना तथा नीचे एकदम जड़तत्व तक के सर्वांगीण रूपांतर से वह कम कुछ भी नहीं है। एकमात्र सर्वोच्च कृपाशक्ति ही इस चमत्कार को साधित कर सकती है।

श्रीअरविन्द ने अपनी उर्ध्वारोहण करती हुई चेतना में अनुभूति प्राप्त कर यह उद्घोषणा की कि मनुष्य कोई एक अमिश्र और अखंड सत्ता नहीं है। मनुष्य क्रम विकास की एक मध्य–कड़ी है जिसके पास शरीर, प्राण, मन व अध्यात्म बोध प्राप्ति के उपकरण हैं। इस प्रकार उसकी सत्ता के अनेक खंड व स्तर हैं, जिन्हें योग की भाषा में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष विज्ञानमय कोष तथा आनंदमय कोष के नाम से अभिहित किया गया है। फिर भी वह एक अपूर्ण रचना है। उसमें पूर्णता, अमरत्व, आनंद, शुद्ध प्रेम, उच्चतम ज्ञान, परम शांति, दिव्य ऊर्जा, दिव्यतम सौंदर्य के अक्षय सामर्थ्य की खोज तो है किंतु उसके जीवन की गति इसके बिल्कुल विपरीत है। मन के पाश में बँधा वह रोज अपने अहम् की वेदी पर बलि चढ़ता है। रोज–रोज मरता है, शायद इसलिए कि किसी एक दिन वह शाश्वत क्षण आ उपस्थित हो और उसके अंदर छिपा देवत्व प्रकट कर सके। मानव जीवन का यह विरोधाभास, उसके स्वर्णिम भविष्य की अभीप्सा, रक्त रंजित वर्तमान के बीच की दूरी, आधुनिक भौतिकवाद का बढ़ता अत्यंत दबाव ही उसकी पीड़ा का मूल कारण है। किंतु वास्तव में सूक्ष्म चिंतन करने से हमें यह पीड़ा मानव के अंदर छिपे दिव्य जीवन अथवा पूर्णता को प्रगट करने की प्रसव पीड़ा मालूम होती है।

प्रश्न उठता है कि यह पीड़ा आखिर कब व कैसे समाप्त होगी? महायोगी मानव मन की इस दुविधाजनक स्थिति में उसे ईश्वर का अभिनव पैगाम देते हुए कहते हैं, 'मनुष्य की समस्या का एकमात्र समाधान है, चेतना का विकास।' वे कहते हैं कि मन से भी परे एक उच्चतम, वृहत्तर सत्य चेतना हमारे अंदर विद्यमान है, जिसे अतिमानसिक चेतना कहते हैं। इस चेतना का हमारे आंतरिक व बाहरी जीवन में हस्तक्षेप ही हमें मानवता की सीमा से मुक्त कर उसके परे के अतिमानवीय क्षेत्र में प्रवेश करा सकता है। जड़तत्व के भीतर छिपा यह दिव्य तत्व मनुष्य के 'मन' के रूप में धरती पर प्रकट हो चुका है। अवश्य ही यह दिव्य पुष्प अधखिला है, सुगंध का आभास देता है, पर सुगंध नहीं है। पराग की खोज में तो है किंतु उसमें मिठास नहीं है। इस अधखिले, अविकसित मन रूपी पुष्प को केवल आध्यात्मिक तप की अग्नि की आँच देकर निर्मल बनाया जा सकता है। तभी श्रीअरविन्द का अतिमन प्रत्येक मानव में प्रकट हो, धरती पर मानव के आगे का प्रारूप अतिमानव (सुपर मैन) प्रकट होगा तथा वह शाश्वत जीवन को अभिव्यक्त करेगा।

अब कौन बुलाएगा?

आर.बी. श्रीवास्तव 'चन्द्रानन्द'
ग्वालियर

आज दृगों में नीर है।
आज हृदय में पीर है।।
आएगी विपदाएँ जब जब, ढाँढस कौन बँधाएगा?
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
टीस उठ रही, रह-रह दिल में।
तुम नजर न आते, सत्संग-महफिल में।।
गहरा घाव हृदय में सबके, मलहम कौन लगाएगा?
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
हाय! गुरुदेव हमसे दूर हुए।
उनके दर्शन से मजबूर हुए।।
फँसगी भँवर में जब जब नैया, तट पर कौन लगाएगा?
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
यादों से अपनी, तुम ना तड़पाओ।
हम दुखियों के, सपनों में आ जाओ।।
करो कृपा हे ओढ़रदानी, मन कमल यह खिल जाएगा।
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
इस दिल को, तुमसे प्यार है।
हम बच्चों की, यह मनुहार है।।
ऋणी रहेंगे, जन्म-जन्म तक, 'चन्द्रानन्द' नित्तगुण गाएगा।
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
सकट की घड़ियों में हमको, ढाँढस कौन बधाएगा?
लल्ला! मुनियाँ!! यह कहकर, अब कौन बुलाएगा?
अब कौन बुलाएगा?

चाय का सेवन उपयोगी या हानिकारक

फौजिया नसीम 'शाद'

भारत में चाय का प्रचलन करने वाले अंग्रेज तो भारत छोड़ कर चले गये लेकिन यहां के निवासियों को जाते–जाते चाय पीना सिखा गये। चाय चीन, जापान, भारत, इंग्लैण्ड व अमेरिका आदि में उत्पन्न होने वाली वनस्पति है। अन्य देशों की तुलना में चाय का भारत में सेवन एक रूचिकर पेय के रूप में गांव से लेकर शहरों तक में होता है।

इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि लोग दूध की अपेक्षा चाय के सेवन को महत्व देने लगे हैं। जरा सी थकान अनुभव हुई नहीं कि चाय का सेवन आवश्यक हो जाता है। लोग चाय का सेवन करते हैं और भूल जाते हैं कि जो चाय वह पी रहे हैं वह चाय उनके लिए उपयोगी है या हानिकारक। उन्हें तो चाय पीने से मतलब होता है। चाय का अल्प सेवन स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुचाता लेकिन चाय का अधिक सेवन स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुचाता है। इस लेख में हम चाय की उपयोगिता और हानियों का उल्लेख करेंगे–

चाय की उपयोगिता

–शीत प्रधान देश में चाय का सेवन लाभदायक सिद्ध होता है।

–चाय का सेवन अल्प कालीन विशेष स्फूर्ति को उत्पन्न करता है।

–काली चाय जिसे ब्लैक नाम से भी जाना जाता है, का अल्प मात्रा में सेवन थकान को दूर कर शरीर में स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

–हरी चाय जिसे आयुर्वेद में कषाय के नाम से सम्बोधित किया गया है। स्वाद की दृष्टि से कसैली होती है। यह चाय पित्त व गले के रोगों में लाभदायक सिद्ध होती है।

–चाय में मुलहठी और सोंठ डालकर पीना खांसी में अत्यन्त उपयोगी होता है।

–लौंग, सोंठ डालकर सेवन करने से चाय पेट दर्द में लाभ प्रद सिद्ध होती है।

चाय से होने वाली हानियां

–चाय के अधिक सेवन करने से शरीर में उपलब्ध विटामिन्स नष्ट होते हैं।

–इसके अधिक सेवन से स्मरण शक्ति में दुर्बलता आती है।

–चाय का सेवन लिवर (जिगर) पर बुरा प्रभाव डालता है।

–चाय का अधिक सेवन रक्त आदि की वास्तविक उष्मा को नष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

–मिलावटी दूध से बनी चाय का सेवन अमाशय पर बुरा प्रभाव डालता है और पाचन क्रिया को क्षति पहुचाता है।

–चाय में उपलब्ध कैफीन हृदय पर बुरा प्रभाव डालती है, अतः चाय का अधिक सेवन प्रायः हृदय के रोग को उत्पन्न करने में सहायक होता है।

–चाय में उपलब्ध थीन तत्व छः प्रतिशत मात्रा में होता है जो रक्त को दूषित करने के साथ शरीर के अवयवों को कमजोर भी करता है।

–चाय में उपलब्ध यूरिक एसिड से मूत्राशय एवं मूत्र नलिकायें निर्बल हो जाती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप चाय का सेवन करने वाले व्यक्ति को बार–बार मूत्र आने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र
श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का

यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग–1	रु. 100.00	22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
2. योग सिद्धान्त, भाग–2	रु. 100.00	23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00	24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
4. भोग–रोग–योग	रु. 10.00	25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00	26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00	27. दीदी के भजन	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00	28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
8. योगिराज मुक्तेश्वर जी	रु. 10.00	29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित कथायें	रु. 20.00	30. अध्यात्म भजनावली–1	रु. 5.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00	31. अध्यात्म भजनावली–2	रु. 5.00
11. आठ योगी	रु. 10.00	32. अध्यात्म भजनावली–3	रु. 5.00
12. योग बचो – कैसे	रु. 7.00	33. अध्यात्म भजनावली–4	रु. 5.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00	34. अध्यात्म भजनावली–5	रु. 5.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00	35. Life Force	रु. 10.00
15. सुधा संगीत	रु. 5.00	36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
16. योग क्या ?	रु. 5.00	37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
17. यम–नियम	रु. 7.00	38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00	39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00	40. सद्गुरु कृपालीला, भाग–1	रु. 35.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00	41. सद्गुरु कृपालीला, भाग–2	रु. 40.00
21. योग रामायण	रु. 20.00	42. चरणोदक	रु. 10.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आकर अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। – व्यवस्थापक

SIDDHYOG Postal Regd. No: Ag. 19/06-08

AUGUST 2008

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

डाकघर (डाकघर) को आधार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

विज्ञापन सामग्रियों से निम्नांकित की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर ऐसा आकर्षक (स्थाई प्रकार) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थाई रूप से प्रदर्शन (स्टीकर/टिन)
3. टेलीफोन बूथ पर स्थाई रूप से प्रदर्शन (स्टीकर/टिन) दर : ₹ 1000 प्रति बैनल्स प्रतिमाह (विशेष छूट में ₹ 500.00 प्रति बैनल)
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग्स लगाकर विज्ञापन दर ₹ 5.00 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पेंटिंग आकार विज्ञापन दर ₹ 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की छत पर स्थाई पेंटिंग/लेखन की हुई लम्बाकार विज्ञापन दर रू० 100/- प्रति वर्ग प्रतिदिन छत का मूल्य रू० 400/-
7. रियायती पोस्ट कार्डों के माध्यम से विज्ञापन (सर्वाधिक पोस्ट कार्ड की आधे भाग पर जानकारी का विज्ञापन - दर ₹. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। रियायती पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संरक्षापक :– योगसोमेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय स्कीम एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा